CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

17-4

अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीकृत ३५६०

कर्मप्रकृति

सम्पादन-अनुवाद

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह एक लघुकाय किन्तु महत्त्वपूर्ण कृति है, जिसमें सरल संस्कृत गद्यमें जैन कर्म-सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है। डॉ० गोकुलचन्द्र जैनने पहली बार इसका सम्पादन तथा हिन्दी अनुवाद किया है। विषयके आधारपर सम्पादकने पूरी कृति-को छोटे-छोटे दो सौ बत्तीस वाक्य-खण्डोंमें विभाजित किया है।

प्रस्तुत कर्मप्रकृतिमें जैन कर्म-सिद्धान्त-के अनुसार द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेश, ज्ञानावरणीय आदि आठ मूल-प्रकृतियों, एक सौ अड़तालीस उत्तरप्रकृतियों, उत्तरोत्तर प्रकृतियों, संसारी तथा मुक्त जीव, पाँच प्रकारकी उपलब्धियों तथा १४ गुणस्थानोंका व्यवस्थित वर्णन किया गया है। विषयके अतिरिक्त भाषाके लालित्य और शैलीकी प्रवाहमयताके कारण प्रस्तुत कृतिका महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। साधारण संस्कृतका जानकार व्यक्ति भी अभयचन्द्रकी इस कृतिसे जैन कर्म-सिद्धान्तकी पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सकता है। ललित हिन्दी-अनुवाद तथा परिशिष्ट एवं प्रस्तावना आदिके कारण इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गयी है।

मूल्य दो रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभयचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीकृत

कर्मप्रकृति

सम्पादन-अनुवाद

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला : संस्कृत ग्रन्थाङ्क ३४
ग्रन्थमाला सम्पादक : डॉ० हीरालाल जैन, आ० ने० उपाध्ये

KARMAPRAKRTI
OF ABHAYACHANDRA
Edited by
Dr. Gokulchandra Jain

Published by
Bharatiya Jnanpith
First Edition 1968
Price Rs. 2.00

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय कार्यालय
३६२०।२१, नेता जी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रथम संस्करण १९६८
मूल्य दो रुपये

सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी-५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

General Editorial

The Karma doctrine elaborated in Jainism is a remarkable theory which makes an individual responsible for the consequences of one's own thoughts, words and deeds, here and elsewhere. The energy generated by the activities of mind, speech and body attract Karmic stuff towards the soul which has to bear its fruits, good as well as bad. There is no place here for any divine dispensation, or supernatural intervention, either by way of favour (or grace) or punishment. Basically the doctrine breeds the spirit of self-help making one realise that one reaps the fruits of what one has sown, and that there is no escape from them.

A vast amount of literature has grown to propound and explain the doctrinal details about Karman (See K. Ananadaji: Karma–saṃbaṃdhī Jaina Sāhitya (in Gujarati), a paper submitted to the Seventh Gujarati Sāhitya Pariṣad, Bhavnagar; W. Schubring: Die Lehre der Jainas (Berlin und Leipzig 1935), p. 215, Section 199; Śrīnipuṇamuni and H. R. Kapadia: Karma–Siddhānta–saṃbaṃdhī Sāhitya (in Gujarati), Śrī-Mohanalālaji Jaina Bhaṃḍāra, Surat 1965). For an expositon of the Doctrine of Karman in Jaina Philosophy one can conveniently consult a book of this title in English published by the Trustees, Bai Vijibai Jivanlal Panalal Charity Fund, Bombay, 1948, being the translation of the original dissertation in German by the late Helmuth von Glasenapp (Leipzig 1915).

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

The Karma-prakṛti is a favourite title for a number of small and big works, some in Prākrit and some in Sanskrit (Jinaratnakośa by H. D. Velankar, Poona 1944, pp. 71-2) composed by different authors. The text published here is in Sanskrit. It is in prose, more or less in the Sūtra style. The object of the author is to enumerate the varieties and sub-varieties of Karmas and give their definitions and explanations (in relation to Guṇasthānas etc.) A handy text like this could be easily memorised, in earlier days, according to the traditional method of study. It is easier to propound further details based on a text like this fully memorised.

The name of the author is Abhayacandra, to be distinguished from others of the same name by his title Siddhānta-cakravartin. The Mss. of this work are found mostly in the South, in the Old-Kannaḍa script. The author possibly hails from Karṇāṭaka. On the basis of the available epigraphic evidence, noted by the editor, Abhayacandra-Siddhānta-cakravartin flourished in the 13th century A. D. He died observing Samadhi-maraṇa, in 1279 A. D.

The General Editors thank Dr. G. C. Jain for giving us in this tiny volume a neatly edited Sanskrit text of the Karmaprakṛati along with a close Hindi translation of it.

H. L. Jain
A. N. Upadhye

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रास्ताविक

कन्नड़ प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थसूचीमें अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कृत कर्म-प्रकृतिकी सात पाण्डुलिपियोंका परिचय दिया गया है। किसी भी पाण्डुलिपि पर लेखन काल नहीं है। सभीकी लिपि कन्नड है और भाषा संस्कृत।

यह एक लघु किन्तु महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें सरल संस्कृत गद्यमें संक्षेप-में जैन कर्म सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है। पहली वार मैंने इसका सम्पादन और हिन्दी अनुवाद किया है। विषयके आधार पर मैंने पूरी कृतिको छोटे-छोटे दो सौ वत्तीस वाक्य खण्डोंमें विभाजित किया है।

प्रारम्भमें कर्मके द्रव्यकर्म, भावकर्म, और नोकर्म ये तीन भेद दिये गये हैं; उसके वाद द्रव्यकर्मके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश ये चार भेद बताये हैं। प्रकृतिके मूलप्रकृति, उत्तरप्रकृति और उत्तरोत्तरप्रकृति, ये तीन भेद हैं। मूलप्रकृति ज्ञानावरणीय आदिके भेदसे आठ प्रकारकी है और उत्तरप्रकृतिके एक सौ अड़तालीस भेद हैं। अभयचन्द्रने बहुत ही सन्तुलित शब्दोंमें इन सबका परिचय दिया है। उत्तरोत्तर प्रकृति बन्धके विषयमें कहा गया है कि इंसे वचन द्वारा कहना कठिन है। इसके बाद स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्धका वर्णन हैं। भावकर्म और नोकर्मके विषयमें एक-एक वाक्यमें कह कर आगे संसारी और मुक्त जीवका स्वरूप तथा जीवके क्रमिक विकासकी प्रक्रियासे सम्बन्धित पाँच प्रकारकी लब्धियों तथा चौदह गुणस्थानोंका वर्णन किया गया है।

विषयके अतिरिक्त भाषाका लालित्य और शैलीकी प्रवाहमयताके कारण प्रस्तुत कृतिका महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। साधारण संस्कृतका जानकार व्यक्ति भी अभयचन्द्रकी इस कृतिसे जैन कर्म सिद्धान्तकी पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सकता हैं।

कर्मप्रकृतिके प्रारम्भ या अन्तमें अभयचन्द्रने अपने विषयमें विशेष जानकारी नहीं दी। अन्तमें केवल इतना लिखा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"कृतिरियम् अभयचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिनः।"

अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके विषयमें कई शिलालेखोंसे जानकारी मिलती है। मूल संघ, देशिय गण, पुस्तक गच्छ, कोण्डकुन्दान्वयकी इंगलेश्वरी शाखाके श्रीसमुदायमें माघनन्दि भट्टारक हुए। उनके नेमिचन्द्र भट्टारक तथा अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ये दो शिष्य थे। अभयचन्द्र बालचन्द्र पंडितके श्रुतगुरु थे।[1]

हलेबीड[2] के एक संस्कृत और कन्नड मिश्रित शिलालेखमें अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके समाधिमरणका उल्लेख है—यह लेख शक संवत् १२०१—१२७९ ईसवीका है। हलेबीड[3] के ही एक अन्य शिलालेखमें अभयचन्द्रके प्रिय शिष्य बालचन्द्रके समाधिमरणका उल्लेख है। यह लेख शक संवत् ११९७, सन् १२७४ ई०का है।

इन दोनों अभिलेखोंसे अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका समय ईसाकी तेरहवीं शती प्रमाणित होता है। वे सम्भवतया १३वीं शतीके प्रारम्भमें हुए और ७९ वर्ष तक जीवित रहे।

रावन्दूरके एक शिलालेख (शक १३०६) में श्रुतमुनिको अभयचन्द्रका शिष्य बताया गया है।[4]

भारंगीके एक शिलालेखमें कहा गया है कि राय राजगुरु मण्डलाचार्य महावाद वादीश्वर रायवादि पितामह अभयचन्द्र सिद्धान्तदेवका पुराना (ज्येष्ठ) शिष्य बुल्ल गौड़ था, जिसका[5] पुत्र गोप गौड़ नागर खण्डका शासक था। नागर खण्ड कर्णाटक देशमें था।

बुल्ल गौड़के समाधिमरणका उल्लेख भारंगीके एक अन्य शिलालेखमें है, जिसमें कहा गया है[6] कि बुल्ल या बुल्लुपको यह अवसर अभयचन्द्रकी कृपासे से प्राप्त हुआ था।

---

१. E. C. V. Belur tl, no. 133 जैन शिलालेख संग्रह भाग ३, लेख ५२४
२. Ibid no. 131, 132 ,, लेख ५१४
३. वही
४. E. C. IV. Hunsūr tl. no. 123 ,, लेख ५८४
५. E. C. VIII. Sorab tl. no. 329 ,, लेख ६१०
६. E. C. VIII. Sorab tl. no. 330 ,, लेख ६४६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुम्मचके एक शिलालेखमें अभयचन्द्रको चैत्यवासी कहा गया है।

अभयचन्द्रके समाधिमरणसे सम्बन्धित उपर्युक्त शिलालेखमें कहा गया है कि वह छन्द, न्याय, निघण्टु, शब्द, समय, अलंकार, भूचक्र, प्रमाणशास्त्र आदिके प्रकाण्ड पण्डित थे। इसी तरह श्रुतमुनिने परमागमसार (१२६३ शक) के अन्तमें अपना परिचय देते हुए लिखा है—

"सद्दागम-परमागम-तक्कागम-णिरवसेसवेदी हु।
विजिद-सयलण्णवादी जयउ चिरं अभयसूरि-सिद्धंती॥"

इससे भी अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है।

कर्मप्रकृतिका सम्पादन और हिन्दी अनुवाद मैंने सन् १९६५ में किया था। कई कारणों से यह अव प्रकाशित हो पायी है। इसके सम्पादन-प्रकाशनमें जिनका भी योगायोग है, उन सबका आभारी हूँ।

'सत्यशासन-परीक्षा' तथा 'यशस्तिलकका सांस्कृतिक अध्ययन' के बाद पुस्तक रूपमें प्रकाशित यह मेरी तीसरी कृति है। आशा है विज्ञ-जन इसमें रहीं त्रुटियोंकी ओर ध्यान दिलाते हुए, इसका समुचित मूल्यांकन करेंगे।

—गोकुलचन्द्र जैन

वाराणसी
३० सितम्बर १९६८

---

७. E. C. VIII Nagar tl no. 46 जैन शिलालेख संग्रह भाग ३ लेख ६६७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

विषय	क्रमाङ्क
मंगलाचरण	
कर्मके भेद	१
द्रव्य कर्मके भेद	२
प्रकृतिबन्ध	
प्रकृतिका लक्षण	३
प्रकृतिके भेद	४
मूल प्रकृतिके भेद	५
ज्ञानावरणीयका लक्षण और दृष्टान्त	६
दर्शनावरणीयका लक्षण और दृष्टान्त	७
वेदनीयका लक्षण और दृष्टान्त	८
मोहनीयका लक्षण और दृष्टान्त	९
आयुका लक्षण और दृष्टान्त	१०
नामका लक्षण और दृष्टान्त	११
गोत्रका लक्षण और दृष्टान्त	१२
अन्तरायका लक्षण और दृष्टान्त	१३
उत्तर प्रकृतिके भेद	१४
ज्ञानावरणीयकी पाँच प्रकृतियाँ	१५
मतिज्ञानावरणीयका लक्षण	१६
श्रुतज्ञानावरणीयका लक्षण	१७
अवधिज्ञानावरणीयका लक्षण	१८
मनःपर्ययज्ञानावरणीयका लक्षण	१९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवलज्ञानावरणीयका लक्षण	२०
दर्शनावरणीयके नव भेद	२१
चक्षुर्दर्शनावरणीयका लक्षण	२२
अचक्षुर्दर्शनावरणीयका लक्षण	२३
अवधिदर्शनावरणीयका लक्षण	२४
केवलदर्शनावरणीयका लक्षण	२५
निद्राका लक्षण	२६
निद्रानिद्राका लक्षण	२७
प्रचलाका लक्षण	२८
प्रचलाप्रचलाका लक्षण	२९
स्त्यानगृद्धिका लक्षण	३०
वेदनीयके भेद	३१
साता-वेदनीयका लक्षण	३२
असाता-वेदनीयका लक्षण	३३
मोहनीयके दो भेद	३४
दर्शन-मोहनीयके तीन भेद	३५
मिथ्यात्वका लक्षण	३६
सम्यग्मिथ्यात्वका लक्षण	३७
सम्यक्त्व प्रकृतिका लक्षण	३८
चारित्र-मोहनीयके दो भेद	३९
कषायके सोलह भेद	४०
अनन्तानुबन्धि-कषाय	४१
अप्रत्याख्यान-कषाय	४२
प्रत्याख्यान-कषाय	४३
संज्वलन-कषाय	४४
अनन्तानुबन्धि-कषायोंकी शक्ति	४५
अप्रत्याख्यान-कषायोंकी शक्ति	४६
प्रत्याख्यान-कषायोंकी शक्ति	४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संज्वलन कषायोंकी शक्ति	४८
हास्यका लक्षण	४९
रतिका लक्षण	५०
अरतिका लक्षण	५१
शोकका लक्षण	५२
भयका लक्षण	५३
जुगुप्साका लक्षण	५४
स्त्री-वेदका लक्षण	५५
पुंवेदका लक्षण	५६
नपुंसक वेदका लक्षण	५७
आयुके चार भेद	५८
नरकायुका लक्षण	५९
तिर्यगायुका लक्षण	६०
मनुष्यायुका लक्षण	६१
देवायुका लक्षण	६२
नामकर्मकी ब्यालीस प्रकृतियाँ	६३
नामकर्मकी तेरानवे पिण्ड प्रकृतियाँ	६४
गति-नाम कर्मके चार भेद	६५
नरकगतिका लक्षण	६६
तिर्यग्गतिका लक्षण	६७
मनुष्यगतिका लक्षण	६८
देवगतिका लक्षण	६९
गति-नामकर्मका सामान्य लक्षण	७०
जाति-नामकर्मके पाँच भेद	७१
एकेन्द्रिय-जातिका लक्षण	७२
द्वीन्द्रिय-जातिका लक्षण	७३
त्रीन्द्रिय-जातिका लक्षण	७४
चतुरिन्द्रिय-जातिका लक्षण	७५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचेन्द्रिय-जातिका लक्षण	७६
शरीर-नाम कर्मके पांच भेद	७७
औदारिक शरीर-नाम कर्मका लक्षण	७८
वैक्रियक शरीर-नाम कर्मका लक्षण	७९
आहारक शरीर-नाम कर्मका लक्षण	८०
तैजस शरीर-नाम कर्मका लक्षण	८१
कार्मण शरीर-नाम कर्मका लक्षण	८२
वन्धन-नाम कर्मके पाँच भेद	८३
औदारिक शरीर-वन्धका लक्षण	८४
वैक्रियक, आहारक, तैजस तथा कार्मण शरीर-वन्धका लक्षण	८५
संघात-नाम कर्मके पांच भेद	८६
औदारिक शरीर-संघात का लक्षण	८७
वैक्रियक, आहारक, तैजस तथा कार्मण शरीर संघात का लक्षण	८८
संस्थान-नाम कर्मके छह भेद	८९
समचतुरस्र-संस्थानका लक्षण	९०
न्यग्रोध-संस्थानका लक्षण	९१
स्वाति-संस्थानका लक्षण	९२
कुब्जक-संस्थान का लक्षण	९३
वामन-संस्थानका लक्षण	९४
हुंडक-संस्थान का लक्षण	९५
अंगोपांग-नाम कर्मके तीन भेद	९६
औदारिक शरीर-अंगोपांगका लक्षण	९७
वैक्रियक तथा आहारक शरीर-अंगोपांगका लक्षण	९८
संहनन-नाम कर्मके छह भेद	९९
व्रजवृषभनाराच संहननका लक्षण	१००
वज्रनाराच संहननका लक्षण	१०१
नाराच संहननका लक्षण	१०२
अर्धनाराच संहननका लक्षण	१०३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कीलित संहननका लक्षण	१०४
असंप्राप्तसृपाटिका संहननका लक्षण	१०५
वर्ण नाम कर्मके पाँच भेद	१०६
वर्ण नाम कर्मका सामान्य लक्षण	१०७
गन्ध नाम कर्मके दो भेद	१०८
गन्ध नाम कर्मका लक्षण	१०९
रस नाम कर्मके पाँच भेद	११०
रस नाम कर्मका सामान्य लक्षण	१११
लवण नामक रसका मधुरमें अन्तर्भाव	११२
स्पर्श नाम कर्मके आठ भेद	११३
स्पर्श नाम कर्मका कार्य	११४
आनुपूर्वी नाम कर्मके चार भेद और उनका कार्य	११५
आनुपूर्वी नाम कर्मका लक्षण	११६
अगुरुलघु नाम कर्मका लक्षण	११७
उपघात नाम कर्मका लक्षण	११८
परघात नाम कर्मका लक्षण	११९
आतप नाम कर्मका लक्षण	१२०
उद्योत नाम कर्मका लक्षण	१२१
उच्छ्वास नाम कर्मका लक्षण	१२२
विहायोगति नाम कर्मके दो भेद	१२३
प्रशस्त विहायोगतिका लक्षण	१२४
अप्रशस्त विहायोगतिका लक्षण	१२५
त्रस नाम कर्मका लक्षण और कार्य	१२६
स्थावर नाम कर्मका लक्षण और कार्य	१२७
बादर नाम कर्मका लक्षण और कार्य	१२८
सूक्ष्म नाम कर्मका लक्षण	१२९
पर्याप्त नाम कर्मका लक्षण	१३०
अपर्याप्त नाम कर्मका लक्षण	१३१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याप्तिके छह भेद १३२
आहार-पर्याप्तिका लक्षण और दृष्टान्त १३३
शरीर-पर्याप्तिका लक्षण और दृष्टान्त १३४
इन्द्रिय-पर्याप्तिका लक्षण और दृष्टान्त १३५
श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिका लक्षण १३६
भाषा पर्याप्तिका लक्षण १३७
मनःपर्याप्तिका लक्षण १३८
प्रत्येक शरीर नाम कर्मका लक्षण १३९
साधारण शरीर नाम कर्मका लक्षण १४०
स्थिर नाम कर्मका लक्षण १४१
अस्थिर नाम कर्मका लक्षण १४२
शुभ नाम कर्मका लक्षण १४३
अशुभ नाम कर्मका लक्षण १४४
दुर्भग नाम कर्मका लक्षण १४५
सुभग नाम कर्मका लक्षण १४६
सुस्वर नाम कर्मका लक्षण १४७
दुःस्वर नाम कर्मका लक्षण १४८
आदेय नाम कर्मका लक्षण १४९
अनादेय नाम कर्मका लक्षण १५०
यशस्कीर्ति नाम कर्मका लक्षण १५१
अयशस्कीर्ति नाम कर्मका लक्षण १५२
निर्माण नाम कर्मका लक्षण १५३
तीर्थंकर नाम कर्मका लक्षण १५४
गोत्र कर्म के दो भेद १५५
उच्च गोत्र का लक्षण १५६
नीच गोत्रका लक्षण १५७
अन्तराय कर्मके पांच भेद १५८
दानान्तरायका लक्षण १५९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लाभान्तरायका लक्षण १६०
भोगान्तरायका लक्षण १६१
उपभोगान्तरायका लक्षण १६२
वीर्यान्तरायका लक्षण १६३
उत्तर प्रकृतियोंका उपसंहार १६४

स्थितिबन्ध

स्थितिका लक्षण १६७
ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय तथा अन्तरायकी उत्कृष्ट स्थिति १६९
दर्शनमोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति १७०
चारित्रमोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति १७१
नाम और गोत्रकी उत्कृष्ट स्थिति १७२
आयु कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति १७३
वेदनीयकी जघन्य स्थिति १७४
नाम और गोत्रको जघन्य स्थिति १७५
ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु और अन्तराय की जघन्य स्थिति १७६

अनुभागबन्ध

अनुभागका लक्षण १८०
घाति कर्मोंका अनुभाग १८१
अघाति कर्मोंकी अशुभ तथा शुभ प्रकृतियोंका अनुभाग १८२

प्रदेश बन्ध

प्रदेश बन्धका लक्षण १८५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाव कर्म

भाव कर्मका लक्षण १८८
भाव कर्मोंका परिमाण १८९

नोकर्म

नोकर्मका लक्षण १९०
संसारी जीवका लक्षण १९१
मुक्त जीवका लक्षण १९२
संसारी जीवोंके दो भेद १९३
भव्य जीवका लक्षण १९४
भव्य जीवोंके चौदह गुणस्थान १९५
अभव्य जीवका लक्षण १९६
अभव्योंके करणत्रयका अभाव १९७
मिथ्यात्व गुणस्थान १९८
मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वका कथन १९९
क्षयोपशमलब्धि २००
विशुद्धिलब्धि २०१
देशनालब्धि २०२
प्रायोग्यता लब्धि २०३
करणलब्धि २०४
करणके तीन भेद २०५
अधःप्रवृत्तकरणका काल २०६
अपूर्वकरणका काल २०७
अनिवृत्तिकरणका काल २०८
तीनों करणों का सम्मिलित काल २०९
करणत्रयमें विशुद्धि २१०
अधःप्रवृत्तकरण कालमें विशुद्धि परिणाम २११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध:प्रवृत्तकरणकी अंकसंदृष्टि	२१२
अपूर्वकरण	२१३
अनिवृत्तिकरण	२१४
अनिवृत्तिकरणके विषयमें विशेष	२१५
प्रथमोपशम सम्यक्त्वका काल तथा सासादन गुणस्थान	२१६
सासादन गुणस्थानका काल	२१७
सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक तीसरा गुणस्थान	२१८
तीसरे गुणस्थानको स्थिति	२१९
असंयत सम्यग्दृष्टि नामक चौथा गुणस्थान	२२०
देशसंयम नामक पाँचवाँ गुणस्थान	२२१
प्रमत्तसंयत नामक छठा गुणस्थान	२२२
अप्रमत्तसंयत नामक सातवाँ गुणस्थान	२२३
सातिशय अप्रमत्त का लक्षण	२२४
अपूर्वकरण नामक आठवाँ गुणस्थान	२२५
अनिवृत्तिकरण नामक नवम गुणस्थान	२२६
सूक्ष्मसांपराय नामक दशम गुणस्थान	२२७
उपशान्तकषाय नामक ग्यारहवाँ गुणस्थान	२२८
क्षीणकषाय नामक बारहवाँ गुणस्थान	२२९
सयोगकेवलि नामक तेरहवाँ गुणस्थान	२३०
अयोगकेवलि नामक चौदहवाँ गुणस्थान	२३१
मुक्तावस्थाका स्वरूप	२३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमद्-अभयचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचिता

कर्मप्रकृतिः

[मङ्गलाचरणम्]

प्रक्षीणावरणद्वैतमोहप्रत्यूहकर्मणे ।
अनन्तानन्तधीदृष्टिसुखवीर्यात्मने नमः ॥

[१. कर्मणः त्रैविध्यम्]

आत्मनः प्रदेशेषु बद्धं कर्म द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म चेति त्रिविधम् ।

[२. द्रव्यकर्मणः चातुर्विध्यम्]

तत्र प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदेन द्रव्यकर्म चतुर्विधम् ।

मंगलाचरण

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घाति-कर्मोंको नाश करके अनन्तानन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य इन आत्मीय गुणोंको प्राप्त करनेवाले आत्मा (परमात्मा) के लिए नमस्कार है ।

१. कर्मके तीन भेद

आत्माके प्रदेशोंमें बद्ध कर्म तीन प्रकारका है—१. द्रव्यकर्म, २. भावकर्म और ३. नोकर्म ।

२. द्रव्यकर्मके भेद

द्रव्यकर्म प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेशके भेदसे चार तरहका है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृतिबन्धः

[३. प्रकृतेः स्वरूपम्]

तत्र ज्ञानप्रच्छादनादिस्वभावः प्रकृतिः ।

[४. प्रकृतेः त्रैविध्यम्]

सा मूलप्रकृतिरुत्तरप्रकृतिरुत्तरोत्तरप्रकृतिरिति त्रिधा ।

मूलप्रकृतयः

[५. मूलप्रकृतेरष्ट भेदाः]

तत्र ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयमायुष्यं नाम गोत्रमन्तरायश्चेति मूलप्रकृतिरष्टधा ।

[६. ज्ञानावरणीयस्य लक्षणम् उदाहरणं च]

तत्रात्मनो ज्ञानं विशेषग्रहणमावृणोतीति ज्ञानावरणीयं श्लक्ष्णकाण्डपटवत् ।

---

३. प्रकृतिका स्वरूप

ज्ञानको ढँकना आदि स्वभाव प्रकृति है ।

४. प्रकृतिके भेद

वह मूल प्रकृति, उत्तर प्रकृति और उत्तरोत्तर प्रकृति, इस तरह तीन प्रकारकी है ।

५. मूल प्रकृतिके आठ भेद

उनमें ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ मूल प्रकृतिके भेद हैं ।

६. ज्ञानावरणीयका लक्षण और उदाहरण

उक्त आठ भेदों में पतले रेशमी वस्त्रकी तरह जो आत्माके विशेषग्रहण रूप ज्ञानगुण को ढँकता है, वह ज्ञानावरणीय है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[७. दर्शनावरणीयस्य लक्षणम् उदाहरणं च]

दर्शनं सामान्यग्रहणमावृणोतीति दर्शनावरणीयं प्रतिहारवत् ।

[८. वेदनीयस्य लक्षणम् उदाहरणं च]

सुखं दुःखं वा इन्द्रियद्वारैर्वेदयतीति वेदनीयं गुडलिप्तखड्गधारावत् ।

[९. मोहनीयस्य लक्षणम् उदाहरणं च]

आत्मानं मोहयतीति मोहनीयं मद्यवत् ।

[१०. आयुषः लक्षणम् उदाहरणं च]

शरीर आत्मानमेति धारयतीत्यायुष्यं शृङ्खलावत् ।

[११. नामकर्मणः लक्षणम् उदाहरणं च]

नानायोनिषु नारकादिपर्यायैरात्मानं नमयति–शब्दयतीति नाम चित्रकारवत् ।

---

७. दर्शनावरणीयका लक्षण और उदाहरण

प्रतिहार की तरह जो आत्माके सामान्यग्रहणरूप दर्शन गुणको रोकता है, वह दर्शनावरणीय है ।

८. वेदनीयका लक्षण और उदाहरण

गुड़-लपेटी तलवार की धारके समान जो सुख अथवा दुःखको इन्द्रियोंके द्वारा अनुभव कराये, वह वेदनीय है ।

९. मोहनीयका लक्षण और उदाहरण

शराबकी तरह जो आत्माको मोहित करे, वह मोहनीय है ।

१०. आयुका लक्षण और उदाहरण

शृंखलाकी तरह जो शरीरमें आत्माको रोक रखता है, वह आयु कर्म है ।

११. नाम कर्मका लक्षण और उदाहरण

चित्रकारकी तरह जो आत्माको नाना योनियोंमें नरकादि पर्यायों द्वारा नामांकित कराता है, वह नाम कर्म है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१२. गोत्रस्य लक्षणम् उदाहरणं च]

उच्चनीचकुलत्वेनात्मा गूयत इति गोत्रं कुम्भकारवत् ।

[१३. अन्तरायस्य लक्षणम् उदाहरणं च]

दानादिविघ्नं कर्तुमन्तरं दातृपात्रादीनां मध्यमेतीत्यन्तरायो भाण्डारिकवत् ।

उत्तरप्रकृतयः

[१४. उत्तरप्रकृतिनां भेदाः]

उत्तरप्रकृतयोऽष्टचत्वारिंशदुत्तरशतम् । तद्यथा–

ज्ञानावरणीयम्

[१५. ज्ञानावरणीयस्य पञ्च प्रकृतयः]

मतिज्ञानावरणीयं श्रुतज्ञानावरणीयमवधिज्ञानावरणीयं मनःपर्ययज्ञानावरणीयं केवलज्ञानावरणीयं चेति ज्ञानावरणीयस्य प्रकृतयः पञ्च ।

---

१२. गोत्र कर्मका लक्षण और उदाहरण

कुम्भकारकी तरह जो आत्माको उच्च अथवा नीच कुलके रूपमें व्यवहृत कराता है, वह गोत्र कर्म है ।

१३. अन्तराय कर्मका लक्षण और उदाहरण

भण्डारीको तरह जो दाता और पात्र आदिके बीचमें आकर आत्माके दान आदि में विघ्न डालता है, वह अन्तराय कर्म है ।

१४. उत्तर प्रकृतियोंके भेद

उत्तर प्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस हैं । वे इस प्रकार हैं—

१५. ज्ञानावरणीयकी पाँच प्रकृतियाँ

मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय तथा केवलज्ञानावरणीय, ये पाँच ज्ञानावरणीयकी प्रकृतियाँ हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१६. मतिज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

तत्र पञ्चभिरिन्द्रियैर्मनसा च मननं ज्ञानं मतिज्ञानं तदावृणोतीति मतिज्ञानावरणीयम् ।

[१७. श्रुतज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

मतिज्ञानगृहीतार्थादन्यस्यार्थस्य ज्ञानं श्रुतज्ञानं तदावृणोतीति श्रुतज्ञानावरणीयम् ।

[१८. अवधिज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

वर्णगन्धरसस्पर्शयुक्तसामान्यपुद्गलद्रव्यं तत्संबन्धिसंसारीजीवद्रव्याणि च देशान्तरस्थानि कालान्तरस्थानि च द्रव्यक्षेत्रकालभवभावानवधीकृत्य यत्प्रत्यक्षं जानातीत्यवधिज्ञानं तदावृणोतीत्यवधिज्ञानावरणीयम् ।

---

१६. मतिज्ञानावरणीयका लक्षण

पाँच इन्द्रियों तथा मनकी सहायतासे होनेवाला मननरूप ज्ञान मतिज्ञान है, उसे जो ढँकता है वह मतिज्ञानावरणीय है ।

१७. श्रुतज्ञानावरणीयका लक्षण

मतिज्ञान-द्वारा ग्रहण किये गये अर्थसे भिन्न अर्थका ज्ञान श्रुतज्ञान है, उसे जो आवृत करता है वह श्रुतज्ञानावरणीय है ।

१८. अवधिज्ञानावरणीयका स्वरूप

भिन्न देश तथा भिन्न कालमें स्थित वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श युक्त सामान्य पुद्गल द्रव्य तथा पुद्गल द्रव्यके सम्बन्धसे युक्त संसारी जीव द्रव्योंको जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावकी मर्यादा लेकर प्रत्यक्ष जानता है, वह अवधिज्ञान कहलाता है, उसका आवरण करनेवाला अवधिज्ञानावरणीय है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१९. मनःपर्ययज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

परेषां मनसि वर्तमानमर्थं यज्जानाति तन्मनःपर्ययज्ञानं तदावृणोतीति मनःपर्ययज्ञानावरणीयम् ।

[२०. केवलज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

इन्द्रियाणि प्रकाशं मनश्चानपेक्ष्य त्रिकालगोचरलोकसकलपदार्थानां युगपदवभासनं केवलज्ञानं तदावृणोतीति केवलज्ञानावरणीयम् ।

दर्शनावरणीयम्

[२१. दर्शनावरणीयस्य नव प्रकृतयः]

चक्षुर्दर्शनावरणीयमचक्षुर्दर्शनावरणीयमवधिदर्शनावरणीयं केवलदर्शनावरणीयं निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धिरिति दर्शनावरणीयं नवधा ।

---

१९. मनःपर्ययज्ञानावरणीयका स्वरूप

दूसरोंके मनमें स्थित अर्थको जो जानता है, वह मनःपर्ययज्ञान है, उसे जो रोकता है, वह मनःपर्ययज्ञानावरणीय है ।

२०. केवलज्ञानावरणीयका स्वरूप

इन्द्रिय, प्रकाश और मनकी सहायताके बिना त्रिकाल गोचर लोक तथा अलोकके समस्त पदार्थोंका एक साथ अवभास (ज्ञान) केवलज्ञान है, उसे जो आवृत करता है, वह केवलज्ञानावरणीय है ।

२१. दर्शनावरणीयके नव भेद

चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय, केवलदर्शनावरणीय, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला तथा स्त्यानगृद्धि ये नौ दर्शनावरणीयके भेद हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२२. चक्षुर्दर्शनावरणीयस्य स्वरूपम्]

तत्र चक्षुषा वस्तुसामान्यग्रहणं चक्षुर्दर्शनं तदावृणोतीति चक्षुर्दर्शनावरणीयम् ।

3460

[२३. अचक्षुर्दर्शनावरणीयस्य स्वरूपम्]

शेषैः स्पर्शनादीन्द्रियैर्मनसा च वस्तुसामान्यग्रहणमचक्षुर्दर्शनं तदावृणोतीत्यचक्षुर्दर्शनावरणीयम् ।

[२४. अवधिदर्शनावरणीयस्य स्वरूपम्]

रूपिसामान्यग्रहणमवधिदर्शनं तदावृणोतीत्यवधिदर्शनावरणीयम् ।

[२५. केवलदर्शनावरणीयस्य स्वरूपम्]

समस्तवस्तुसामान्यग्रहणं केवलदर्शनं तदावृणोतीति केवलदर्शनावरणीयम् ।

---

२२. चक्षुदर्शनावरणीयका स्वरूप

चक्षु द्वारा वस्तुका सामान्य ग्रहण चक्षुदर्शन कहलाता है, उसका आवरण चक्षुदर्शनावरणीय है ।

२३. अचक्षुदर्शनावरणीयका स्वरूप

चक्षुके अतिरिक्त शेष स्पर्शन आदि इन्द्रियों तथा मनके द्वारा वस्तुका सामान्यग्रहण अचक्षुदर्शन है, उसका आवरण अचक्षुदर्शनावरणीय है ।

२४. अवधिदर्शनावरणीयका स्वरूप

रूपी पदार्थों का सामान्यग्रहण अवधिदर्शन है, उसका आवरण अवधिदर्शनावरणीय है ।

२५. केवलदर्शनावरणीयका स्वरूप

समस्त वस्तुओंका सामान्यग्रहण केवलदर्शन है, उसका आवरण केवलदर्शनावरणीय है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२६. निद्रायाः स्वरूपम्]

यतो गच्छतः स्थानं तिष्ठत उपवेशनमुपविशतश्शयनं च भवति सा निद्रा ।

[२७. निद्रानिद्रायाः स्वरूपम्]

उत्थापितेऽपि लोचनमुद्घाटयितुं न शक्नोति यतस्सा निद्रानिद्रा ।

[२८. प्रचलायाः स्वरूपम्]

यत ईषदुन्मील्य स्वपिति सुप्तोऽपीषदीषज्जानाति सा प्रचला ।

[२९. प्रचलाप्रचलायाः स्वरूपम्]

यतो निद्रायमाणे लाला वहत्यङ्गानि चलन्ति सा प्रचलाप्रचला ।

---

२६. निद्राका स्वरूप

जिसके कारण चलते, किसी स्थानपर ठहरते, बिस्तर पर बैठते नींद आती है, उसे निद्रा कहते हैं ।

२७. निद्रानिद्राका स्वरूप

जिसके कारण उठाये जाने (जगाये जाने) पर भी आँखें न खुल सकें, उसे निद्रानिद्रा कहते हैं ।

२८. प्रचलाका स्वरूप

जिसके कारण कुछ आँख खोलकर सोये तथा सोते हुए भी कुछ-कुछ जानता रहे, उसे प्रचला कहते हैं ।

२९. प्रचलाप्रचलाका स्वरूप

जिसके कारण सोते हुए लार बहे तथा अंग चलें, उसे प्रचला-प्रचला कहते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[३०. स्त्यानगृद्धेः स्वरूपम्]

यत उत्थापितेऽपि पुनः पुनः स्वपिति निद्रायमाणे चोत्थाय कर्माणि करोति स्वप्नायते जल्पति च सा स्त्यानगृद्धिः ।

वेदनीयम्

[३१. वेदनीयस्य द्वे प्रकृतयः]

सातावेदनीयमसातावेदनीयं चेति वेदनीयं द्विधा ।

[३२. सातावेदनीयस्य स्वरूपम्]

तत्रेन्द्रियसुखकारणचन्दनकर्पूरस्रग्वनितादिविषयप्राप्तिकारणं सातावेदनीयम् ।

[३३. असातावेदनीयस्य स्वरूपम्]

इन्द्रियदुःखकारणविषशस्त्राग्निकण्टकादिद्रव्यप्राप्तिनिमित्तमसातावेदनीयम् ।

---

३०. स्त्यानगृद्धिका स्वरूप

जिसके कारण उठा देने पर भी फिर-फिर सो जाये, नींदमें उठकर कार्य करे, स्वप्न देखे, बड़बड़ाये, उसे स्त्यानगृद्धि कहते हैं ।

३१. वेदनीयके दो भेद

सातावेदनीय और असातावेदनीय, ये दो वेदनीयके भेद हैं ।

३२. सातावेदनीयका स्वरूप

इन्द्रिय-सुखके कारण चन्दन, कर्पूर, माला, वनिता आदि विषयोंकी प्राप्ति जिससे हो, वह सातावेदनीय है ।

३३. असातावेदनीयका स्वरूप

इन्द्रिय-दुःखके कारण विष, शस्त्र, अग्नि, कंटक आदि द्रव्योंकी प्राप्ति जिसके द्वारा हो, वह असातावेदनीय है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोहनीयम्

[३४. मोहनीयस्य द्वौ भेदौ]

दर्शनमोहनीयं चरित्रमोहनीयं चेति मोहनीयं द्विधा।

[३५. दर्शनमोहनीयस्य त्रयः भेदाः]

तत्र मिथ्यात्वं सम्यङ्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वप्रकृतिश्चेति दर्शनमोहनीयं त्रिधा।

[३६. मिथ्यात्वस्य स्वरूपम्]

तत्रातत्त्वश्रद्धानकारणं मिथ्यात्वम्।

[३७. सम्यग्मिथ्यात्वस्य स्वरूपम्]

तत्त्वातत्त्वश्रद्धानकारणं सम्यङ्मिथ्यात्वम्।

---

३४. मोहनीयके दो भेद

दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय, ये दो मोहनीयके भेद हैं।

३५. दर्शनमोहनीयके तीन भेद

उनमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्वप्रकृति, ये तीन दर्शन मोहनीयके भेद हैं।

३६. मिथ्यात्वका स्वरूप

उक्त तीन भेदोंमें मिथ्यात्व वह है, जिससे तत्त्वकी श्रद्धा न होकर विपरीत श्रद्धा हो।

३७. सम्यग्मिथ्यात्वका स्वरूप

जिससे तत्त्व तथा अतत्त्व दोनोंका श्रद्धान हो वह सम्यग्मिथ्यात्व है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[३८. सम्यक्त्वप्रकृतेः स्वरूपम्]

तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शनं चलमलिनमगाढं करोति यत्सा सम्यक्त्वप्रकृतिः ।

[३९. चारित्रमोहनीयस्य द्वौ भेदौ]

कषायनोकषायभेदाच्चारित्रमोहनीयं द्विधा ।

[४०. कषायाणां भेदाः]

तत्रानन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पतः प्रत्येकं क्रोधमानमायालोभा इति कषायाः षोडश ।

[४१. अनन्तानुबन्धिकषायाणां कार्यम्]

तत्रानन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभाः सम्यग्दर्शनं विराधयन्ति ।

---

३८. सम्यक्त्वप्रकृतिका स्वरूप

जो तत्त्वार्थकी श्रद्धारूप सम्यग्दर्शनमें चल, मलिन तथा अगाढ़ दोष उत्पन्न करे, वह सम्यक्त्वप्रकृति है ।

३९. चारित्रमोहनीयके भेद

कषाय और नोकषाय भेदसे चारित्रमोहनीय दो प्रकारका है ।

४०. कषायके भेद

उनमें अनन्तानुबन्धि, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण तथा संज्वलनके विकल्पसे कषाय चार प्रकारकी है और प्रत्येकके क्रोध, मान, माया तथा लोभ ये चार-चार भेद हैं । इस प्रकार कषायके सोलह भेद हैं ।

४१. अनन्तानुबन्धि कषायोंका कार्य

अनन्तानुबन्धि, क्रोध, मान, माया और लोभ सम्यग्दर्शनका घात करते हैं—उसे वे प्रकट नहीं होने देते ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[४२. अप्रत्याख्यानकषायाणां कार्यम्]

अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभा देशसंयमं प्रतिबध्नन्ति ।

[४३. प्रत्याख्यानकषायाणां कार्यम्]

प्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभास्सकलसंयमं प्रतिबध्नन्ति ।

[४४. संज्वलनकषायाणां कार्यम्]

संज्वलनक्रोधमानमायालोभा यथाख्यातचारित्रं निवारयन्ति ।

[४५. अनन्तानुवन्धिकषायाणां शक्तयः]

तत्रानन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभा यथाक्रमं शिलाभेदशिलास्तम्भवेणुमूलक्रिमिरागकम्बलसदृशास्तीव्रतमशक्तयः ।

---

४२. अप्रत्याख्यानावरण कषायोंका कार्य

अप्रख्यानावरण क्रोध, मान, माया, और लोभ देशसंयमको रोकते हैं।

४३. प्रत्याख्यानावरण कषायोंका कार्य

प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ सकलचारित्रको रोकते हैं।

४४. संज्वलन कषायोंका कार्य

संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ यथाख्यात चारित्रको नहीं होने देते हैं।

४५. अनन्तानुवन्धि कषायोंकी शक्ति

अनन्तानुबन्धि क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय क्रमसे शिलाखण्ड, शिलास्तम्भ, वेणुमूल (बाँस की जड़) और क्रिमिराग कम्बल की तरह तीव्रतम शक्तिवाली होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[४६. अप्रत्याख्यानकषायाणां शक्तयः]

अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभा यथाक्रमं भूभेदास्थि-अविभृङ्ग-चक्रमलसदृशास्तीव्रतरशक्तयः ।

[४७. प्रत्याख्यानकषायाणां शक्तयः]

प्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभा यथाक्रमं धूलिरेखाकाष्ठगोमूत्रतनुमल-सदृशास्तीव्रशक्तयः ।

[४८. संज्वलनकषायाणां शक्तयः]

संज्वलनक्रोधमानमायालोभा यथाक्रमं जलरेखावेत्रक्षुरप्रहरिद्रारागसदृशा मन्दशक्तयः ।

[४९. हास्यप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो हासो भवति तद्धास्यम् ।

---

४६. अप्रत्याख्यानावरण कषायोंकी शक्ति

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय क्रमसे पृथ्वीखण्ड, हड्डी, मेढेके सींग तथा चक्रमल (ओंगन) के सदृश तीव्रतर शक्तिवाली होती हैं ।

४७. प्रत्याख्यानावरण कषायोंकी शक्ति

प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभ क्रमसे धूलि-रेखा, काष्ठ, गोमूत्र तथा शरीरके मलके समान तीव्रतर शक्तिवाली होती हैं ।

४८. संज्वलन कषायोंकी शक्ति

संज्वलन क्रोध, मान, माया तथा लोभ क्रमसे जलरेखा, बेंत, खुरपा तथा हल्दीके रंगके सदृश मन्द शक्तिवाली होतो हैं ।

४९. हास्य प्रकृतिका लक्षण

जिससे हँसी आये, वह हास्य प्रकृति है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[५०. रतिप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो रमयति सा रतिः ।

[५१. अरतिप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो विषण्णो भवति सारतिः ।

[५२. शोकप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतः शोचयति रोदयति स शोकः ।

[५३. भयप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो बिभेत्यनर्थात्तद्भयम् ।

[५४. जुगुप्साप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो जुगुप्सा सा जुगुप्सा ।

---

५०. रतिका लक्षण

जिसके कारण रमे (प्रसन्न हो), वह रति है ।

५१. अरतिका लक्षण

जिसके कारण विषण्ण हो, वह अरति है ।

५२. शोकका लक्षण

जिसके कारण शोक करे, वह शोक है ।

५३. भयका लक्षण

जिसके कारण अनर्थसे डरे, वह भय है ।

५४. जुगुप्साका लक्षण

जिसके कारण घृणा आये, वह जुगुप्सा है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[५५. स्त्रीवेदस्य लक्षणम्]

यतः स्त्रियमात्मानं मन्यमानः पुरुषे वेदयति रन्तुमिच्छति सः स्त्रीवेदः ।

[५६. पुंवेदस्य लक्षणम्]

यतः पुमांसमात्मानं मन्यमानः स्त्रियां वेदयति रन्तुमिच्छति सः पुंवेदः ।

[५७. नपुंसकवेदस्य लक्षणम्]

यतो नपुंसकमात्मानं मन्यमानः स्त्रीपुंसोर्वेदयति रन्तुमिच्छति स नपुंसकवेदः ।

आयुः

[५८. आयुष्कर्मणः चत्वारः प्रकृतयः]

नारकायुष्यं तिर्यगायुष्यं मनुष्यायुष्यं देवायुष्यं चेत्यायुश्चतुर्विधम् ।

---

५५. स्त्रीवेदका लक्षण

जिसके कारण अपनेको स्त्री मानता हुआ पुरुषमें रमण करनेकी इच्छा करता है, वह स्त्री वेद है ।

५६. पुंवेदका लक्षण

जिसके कारण अपनेको पुरुष मानता हुआ स्त्री में रमण करनेकी इच्छा करता है, वह पुंवेद है ।

५७. नपुंसकवेद का लक्षण

जिसके कारण अपनेको नपुंसक मानता हुआ स्त्री और पुरुष दोनोंमें रमण करनेकी इच्छा करता है, वह नपुंसकवेद है ।

५८. आयुकर्म के चार भेद

नारकायुष्य, तिर्यगायुष्य, मनुष्यायुष्य और देवायुष्य इस प्रकार आयुके चार भेद हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[५९. नरकायुषो लक्षणम्]

तत्र यन्नारकशरीरे आत्मानं धारयति तन्नारकायुष्यम् ।

[६०. तिर्यगायुषो लक्षणम्]

यत्तिर्यक्छरीरे जीवं धारयति तत्तिर्यगायुष्यम् ।

[६१. मनुष्यायुषो लक्षणम् ।

यन्मनुष्यशरीरे प्राणिनं धारयति तन्मनुष्यायुष्यम् ।

[६२. देवायुषो लक्षणम्]

यद्देवशरीरे देहिनं धारयति तद्देवायुष्यम् ।

नाम

[६३. नामकर्मणः द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतयः]

गतिजातिशरीरबन्धनसंघातसंस्थानाङ्गोपाङ्गसंहननवर्णगन्धरसस्पर्शानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतित्रसस्थावर-

---

५९. नरकायुष्यका लक्षण

जो आत्माको नारक शरीरमें धारण कराता है, वह नरकायुष्य है ।

६०. तिर्यगायुष्यका लक्षण

जो जीवको तिर्यंच-शरीरमें धारण कराता है, वह तिर्यगायुष्य है ।

६१. मनुष्यायुष्यका लक्षण

जो प्राणीको मनुष्य-शरीरमें धारण कराता है, वह मनुष्यायुष्य है ।

६२. देवायुष्यका लक्षण

जो प्राणीको देव-शरीरमें धारण कराता है, वह देवायुष्य है ।

६३. नामकर्मकी वयालीस प्रकृतियाँ

गति, जाति, शरीर, बन्धन, संघात, संस्थान, अंगोपांग, संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आनुपूर्वि, अगुरुलघु, उपघात, परघात,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बादरसूक्ष्मपर्याप्तप्रत्येकशरीरसाधारणशरीरस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभग-दुर्भगसुस्वरदुःस्वरादेयानादेययशस्कीर्त्ययशस्कीर्तिनिर्माणतीर्थंकर-त्वानीतिपिण्डापिण्डरूपा नामकर्मप्रकृतयो द्वाचत्वारिंशत् ।

[६४. नामकर्मणः पिण्डप्रकृतीनां त्रयोनवतिः भेदाः]

पिण्डप्रकृतीनां भेदे तु सर्वा नामप्रकृतयस्त्रयोनवतिः ।

[६५. गतिनामकर्मणः चत्वारः भेदाः]

नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवगतिभेदाद् गतिनाम चतुर्धा ।

[६६. नरकगतेर्लक्षणम्]

यतो जीवस्य नारकपर्यायो भवति सा नरकगतिः ।

आतप, उद्योत, उच्छ्वास, त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति निर्माण तथा तीर्थंकरत्व ये नामकर्मकी पिण्ड-अपिण्डरूप बयालीस प्रकृतियाँ हैं ।

६४. नाम कर्मकी तिरानवे प्रकृतियाँ

पिण्डप्रकृतियोंके भेद करनेपर नामकर्मकी सब प्रकृतियाँ तिरानवे होती हैं ।

६५. गति नाम कर्मके चार भेद

नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति और देवगतिके भेदसे गति नाम कर्मके चार भेद हैं ।

६६. नरकगतिका लक्षण

जिसके कारण जीवकी नारकपर्याय होती है, वह नरकगति है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[६७. तिर्यग्गतेर्लक्षणम्]

यतस्तिर्यक्पर्यायो भवति प्राणिनः सा तिर्यग्गतिः ।

[६८. मनुष्यगतेर्लक्षणम्]

यतो मनुष्यपर्याय आत्मनो भवति सा मनुष्यगतिः ।

[६९. देवगतेर्लक्षणम्]

यतो देवपर्यायो देहिनो भवति सा देवगतिः ।

[७०. गतेः सामान्यलक्षणम्]

नारकादिभवप्राप्तिर्गमनहेतुर्वा गतिनामा ।

[७१. जातिनामकर्मणः पञ्च भेदाः]

एकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियभेदाज्जातिनाम पञ्चधा ।

---

६७. तिर्यग्गतिका लक्षण

जिसके कारण जीवकी तिर्यंच पर्याय होती है, वह तिर्यग्गति है ।

६८. मनुष्यगतिका लक्षण

जिसके कारण आत्माकी मनुष्यपर्याय होती है, वह मनुष्यगति है ।

६९. देवगतिका लक्षण

जिसके कारण प्राणीको देवपर्याय होती है, वह देवगति है ।

७०. गति नाम कर्मका सामान्य लक्षण

अथवा नारक आदि भवप्राप्तिके लिए गमनका कारण गति नाम कर्म है ।

७१. जाति नाम कर्मके पाँच भेद

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रियके भेदसे जाति नाम कर्मके पाँच भेद हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[७२. एकेन्द्रियजातिनामकर्मणः लक्षणम्]

तत्र स्पर्शनेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति यतः सा एकेन्द्रियजातिः ।

[७३. द्वीन्द्रियजातिनामकर्मणः लक्षणम्]

यतः स्पर्शनरसनेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति सा द्वीन्द्रियजातिः ।

[७४. त्रीन्द्रियजातिनामकर्मणः लक्षणम्]

यतः स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति सा त्रीन्द्रियजातिः ।

[७५. चतुरिन्द्रियजातिनामकर्मणः लक्षणम्]

यतः स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुष्मन्तो जीवा भवन्ति सा चतुरिन्द्रियजातिः ।

---

७२. एकेन्द्रिय जाति नामकर्मका लक्षण

जिसके कारण जीव केवल स्पर्शन इन्द्रियवान् होता है, वह एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म है ।

७३. द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण जीव केवल स्पर्शन और रसना इन्द्रिय युक्त होता है, वह द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्म है ।

७४. त्रीन्द्रिय जाति नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण जीव स्पर्शन, रसना तथा घ्राण इन्द्रिय युक्त होता है, वह त्रीन्द्रिय जाति नाम कर्म है ।

७५. चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण जीव स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु युक्त होता है, वह चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[७६. पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्मणः लक्षणम्]

यतः स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति सा पञ्चेन्द्रियजातिः ।

[७७. शरीरनामकर्मणः पञ्च भेदाः]

औदारिकवैक्रियकाहारकतैजसकार्मणानीति शरीरनाम पञ्चधा ।

[७८. औदारिकशरीरनामकर्मणः लक्षणम्]

तत्र यत आहारवर्गणायाताः पुद्गलस्कन्धा औदारिकशरीरकरणे परिणमन्ति तदौदारिकशरीरनाम ।

[७९. वैक्रियकशरीरनामकर्मणः लक्षणम्]

यत आहारवर्गणायाताः पुद्गलस्कन्धा वैक्रियकशरीररूपेण परिणमन्ति तद्वैक्रियकशरीरनाम ।

---

७६. पंचेन्द्रियजाति नामकर्मका लक्षण

जिसके कारण जीव स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रिय युक्त होता है, वह पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म है।

७७. शरीर नाम कर्मके पाँच भेद

औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण, ये शरीर नाम कर्मके पाँच भेद हैं।

७८. औदारिक शरीर नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण आहार वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध औदारिक शरीरके रूपमें परिणत होते हैं, वह औदारिक शरीर नाम कर्म है।

७९. वैक्रियक शरीर नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण आहार वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध वैक्रियक शरीरके रूपमें परिणत होते हैं, वह वैक्रियक शरीर नाम कर्म है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[८०. आहारकशरीरनामकर्मणः लक्षणम्]

यत आहारवर्गणायाताः पुद्गलस्कन्धा आहारकशरीररूपेण परिणमन्ति तदाहारकशरीरनाम ।

[८१. तैजसशरीरनामकर्मणः लक्षणम्]

यतस्तैजसवर्गणायाताः पुद्गलस्कन्धास्तैजसशरीररूपेण परिणमन्ति तत्तैजसशरीरनाम ।

[८२. कार्मणशरीरनामकर्मणः लक्षणम्]

कार्मणवर्गणायाताः पुद्गलस्कन्धाः कार्मणशरीररूपेण परिणमन्ति यतस्तत्कार्मणशरीरनाम ।

[८३. बन्धननामकर्मणः पञ्च भेदाः]

औदारिकादिशरीरपञ्चकाश्रितं बन्धननाम पञ्चधा ।

---

८०. आहारक शरीर नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण आहार वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध आहारक शरीर रूपसे परिणत होते हैं, उसे आहारक शरीर नाम कर्म कहते हैं ।

८१. तैजस शरीर नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण तैजस वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध तैजस शरीर रूपसे परिणत होते हैं, वह तैजस शरीर नाम कर्म है ।

८२. कार्मण शरीर नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण कार्मण वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध कार्मण शरीर रूप परिणत होते हैं, वह कार्मण शरीर नाम कर्म है ।

८३. बन्धन नाम कर्मके पाँच भेद

औदारिक आदि पाँच शरीरों के आश्रित बन्धन नाम कर्म पाँच प्रकारका है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[८४. औदारिकशरीरबन्धननामकर्मणः लक्षणम्]

तत्रौदारिकशरीराकारेण परिणतपुद्गलानां परस्परसंश्लेषरूपो बन्धो यतो भवति तदौदारिकशरीरबन्धननाम ।

[८५. वैक्रियकादिशरीरबन्धननामकर्मणां लक्षणानि]

एवं वैक्रियकाहारकतैजसकार्मणशरीराकारेण परिणतपुद्गलानां परस्परसंश्लेषरूपो बन्धो यतो भवति तानि वैक्रियकाहारकतैजसकार्मणशरीरबन्धननामानि ज्ञातव्यानि ।

[८६. संघातनामकर्मणः पञ्च भेदाः]

औदारिकादिशरीरपञ्चकाश्रितानि संघातनामानि पञ्च ।

---

८४. औदारिक शरीर बन्धन नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण औदारिक शरीरके आकाररूपसे परिणत पुद्गलोंका परस्पर संश्लेष रूप बन्ध होता है, वह औदारिक शरीर बन्धन नाम कर्म है।

८५. वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर बन्धन नाम कर्म

इसी प्रकार जिस कारण वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीरके आकार रूपसे परिणत पुद्गलोंका परस्पर संश्लेष रूप बन्ध होता है, उन्हें क्रमशः वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर बन्धन नाम कर्म कहते हैं।

८६. संघात नाम कर्मके पाँच भेद

औदारिक आदि पाँच शरीरोंके आश्रित संघात नाम कर्म पाँच प्रकारका होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[८७. औदारिकशरीरसंघातनामकर्मणः लक्षणम्]

तत्रौदारिकशरीराकारेण परिणतपरस्परबद्धपुद्गलानां तदाकारवैषम्याभावकारणमौदारिकशरीरसंघातनामकर्म ।

[८८. वैक्रियकादिशरीरसंघातनामकर्मणः लक्षणम्]

एवं वैक्रियकाहारकतैजसकार्मणशरीररूपेण परिणतपरस्परबद्धपुद्गलस्कन्धानां तत्तदाकारवैषम्याभावकारणानि वैक्रियकाहारकतैजसकार्मणशरीरसंघातनामानि ज्ञातव्यानि ।

[८९. संस्थाननामकर्मणः षड्भेदाः]

समचतुरस्रन्यग्रोधस्वातिकुब्जवामनहुण्डभेदात्संस्थाननाम षोढा ।

---

८७. औदारिक शरीर संघात नाम कर्मका लक्षण

औदारिक शरीरके आकाररूपसे परिणत परस्पर बद्ध पुद्गलोंके तदाकार वैषम्यके अभावका कारण औदारिक शरीर संघात नाम कर्म है ।

८८. वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर, संघात नाम कर्मका लक्षण

इसी प्रकार वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर रूपसे परिणत, परस्पर बद्ध पुद्गल स्कन्धोंके उस-उस आकारकी विषमताके अभावका कारण वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर संघात नाम कर्म है ।

८९. संस्थान नाम कर्मके छह भेद

समचतुरस्र, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्ज, वामन और हुण्डक, ये संस्थान नाम कर्मके छह भेद हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[९०. समचतुरस्रसंस्थानस्य लक्षणम्]

तत्र यतः सर्वत्र दशताललक्षणलक्षितप्रशस्तसंस्थानशरीराकारो भवति तत्समचतुरस्रसंस्थानं नाम ।

[९१. न्यग्रोधसंस्थानस्य लक्षणम्]

यत उपरि विस्तीर्णोऽधः संकुचितशरीराकारो भवति तन्न्यग्रोधसंस्थानं नाम ।

[९२. स्वातिसंस्थानस्य लक्षणम्]

यतोऽधो विस्तीर्णं उपरि संकुचितशरीराकारो भवति तत्स्वातिसंस्थानं नाम । स्वातिर्वल्मीकं तत्सादृश्यात् ।

[९३. कुब्जसंस्थानस्य लक्षणम्]

यतो ह्रस्वः शरीराकारो भवति तत्कुब्जसंस्थानं नाम ।

---

९०. समचतुरस्र संस्थान का लक्षण

जिससे सब जगह दशताल लक्षणयुक्त प्रशस्त संस्थान सहित शरीरका आकार होता है, वह समचतुरस्र संस्थान है ।

९१. न्यग्रोध संस्थानका लक्षण

जिसके कारण ऊपर विस्तीर्ण तथा नीचे संकुचित शरीराकार होता है, वह न्यग्रोध संस्थान है ।

९२. स्वाति संस्थानका लक्षण

जिसके कारण नीचे विस्तीर्ण तथा ऊपर संकुचित शरीरका आकार होता है, वह वल्मीक (वांमी) सदृश होनेके कारण स्वातिसंस्थान कहलाता है ।

९३. कुब्जक संस्थानका लक्षण

जिसके कारण शरीरका आकार छोटा (कुबड़ा) होता है, वह कुब्जक संस्थान नाम कर्म है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[९४. वामनसंस्थानस्य लक्षणम्]

यतो दीर्घहस्तपादा ह्रस्वकबन्धश्च शरीराकारो भवति तद्वामनसंस्थानं नाम।

[९५. हुण्डकसंस्थानस्य लक्षणम्]

यतः पाषाणपूर्णगोणिवत् ग्रन्थ्यादिविषमशरीराकारो भवति तद् हुण्डसंस्थानं नाम।

[९६. अङ्गोपाङ्गनामकर्मणस्त्रयो भेदाः]

औदारिकवैक्रियकाहारकशरीरभेदादङ्गोपाङ्गनाम त्रिधा।

[९७. औदारिकशरीराङ्गोपाङ्गस्य लक्षणम्]

तत्रौदारिकशरीरस्य चरणद्वयबाहुद्वयनितम्बपृष्ठवक्षःशीर्षभेदादष्टाङ्गानि, अङ्गुलीकर्णनासिकाद्युपाङ्गानि करोति यत्तदौदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम।

---

९४. वामन संस्थानका लक्षण

जिसके कारण हाथ और पैर लम्बे तथा कबन्ध (धड़) छोटा होता है, उसे वामन संस्थान कहते हैं।

९५. हुण्डक संस्थानका लक्षण

जिसके कारण पत्थर भरी हुई गौनकी तरह, ग्रन्थि आदिसे युक्त विषम शरीराकार होता है, उसे हुण्डक संस्थान कहते हैं।

९६. अंगोपांग नाम कर्मके भेद

औदारिक, वैक्रियक और आहारक, ये अंगोपांग नाम कर्मके तीन भेद हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[९८. वैक्रियकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गयोर्लक्षणे]

एवं वैक्रियकाहारकशरीरयोरपि तदङ्गोपाङ्गकारकं वैक्रियकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गनामद्वयं ज्ञातव्यम् ।

[९९. संहनननामकर्मणः षड् भेदाः]

वज्रवृषभनाराचसंहननवज्रनाराचनाराचार्धनाराचकीलितासंप्राप्तसृपाटिकाभेदतः संहननं नाम षोढा ।

[१००. वज्रवृषभनाराचसंहननस्य लक्षणम्]

तत्र वज्रवत् स्थिरास्थिऋषभो वेष्टनं वज्रवत् वेष्टनकीलकबन्धो यतो भवति तद्वज्रवृषभनाराचसंहननं नाम ।

---

९७. औदारिक शरीर अंगोपांगका लक्षण

औदारिक शरीरके दो पैर, दो हाथ, नितम्ब, पीठ, वक्षस्थल तथा शीर्ष ये आठ अंग और अंगुली, कर्ण, नासिका आदि उपांग जिसके कारण होते हैं, उसे औदारिक शरीर अंगोपांग कहते हैं।

९८. वैक्रियक तथा आहारक शरीर अंगोपांगका लक्षण

इसी तरह जिनके कारण वैक्रियक तथा आहारक शरीरके अंगोपांग होते हैं, उन्हें क्रमशः वैक्रियक तथा आहारक शरीर अंगोपांग कहते हैं।

९९. संहनन नाम कर्मके छह भेद

वज्रवृषभनाराचसंहनन, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन, अर्धनाराचसंहनन, कीलितसंहनन तथा असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, ये संहनन नाम कर्मके छह भेद हैं।

१००. वज्रवृषभनाराच संहननका लक्षण

जिसके कारण वज्रकी तरह स्थिर अस्थि और वृषभ वेष्टन तथा वज्रकी तरह वेष्टन और कीलक बन्ध होता है, उसे वज्रवृषभनाराच संहनन कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१०१. वज्रनाराचसंहननस्य लक्षणम्]

यतो वज्रवत् स्थिरास्थिकीलकबन्धसामान्यवेष्टनं च भवति तद्वज्रनाराचसंहननम् ।

[१०२. नाराचसंहननस्य लक्षणम्]

यतो वज्रवत् स्थिरास्थिबन्धसामान्यकीलिकावेष्टनमेतद्द्वयं भवति तन्नाराचसंहननं नाम ।

[१०३. अर्धनाराचसंहननस्य लक्षणम्]

यतस्सामान्यास्थिबन्धार्धकीलिका भवति तदर्धनाराचसंहननं नाम ।

[१०४. कीलितसंहननस्य लक्षणम्]

यतः कीलित इव सामान्यास्थिबन्धो भवति तत्कीलितसंहननं नाम ।

---

१०१. वज्रनाराच संहननका लक्षण

जिसके कारण वज्रकी तरह स्थिर अस्थि तथा कीलक बन्ध होता है तथा वेष्टन सामान्य होता हैं। उसे वज्रनाराच संहनन कहते हैं।

१०२. नाराच संहननका लक्षण

जिसके कारण वज्रकी तरह स्थिर अस्थिबन्ध तथा सामान्य कीलक और वेष्टन होते हैं, उसे नाराच संहनन कहते हैं।

१०३. अर्धनाराच संहननका लक्षण

जिसके कारण सामान्य अस्थिबन्ध अर्ध कीलित होता है, उसे अर्धनाराच संहनन कहते हैं।

१०४. कीलित संहननका लक्षण

जिसके कारण कीलितकी तरह सामान्य अस्थिबन्ध होता है, वह कीलित संहनन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१०५. असंप्राप्तसृपाटिकासंहननस्य लक्षणम्]

यतः परस्परासंबद्धास्थिबन्धो भवति तदसंप्राप्तसृपाटिकासंहननं नाम।

[१०६. वर्णनामकर्मणः पञ्च भेदाः]

श्वेतपीतहरितारुणकृष्णभेदाद् वर्णनाम पञ्चधा।

[१०७. वर्णनामकर्मणः सामान्यलक्षणम्]

तत्तत्स्वस्वशरीराणां श्वेतादिवर्णान्यत्करोति तद्वर्णनाम।

[१०८. गन्धनामकर्मणः द्वौ भेदौ]

सुगन्धदुर्गन्धभेदाद् गन्धनाम द्वेधा।

[१०९. गन्धनामकर्मणः लक्षणम्]

स्वस्वशरीराणां स्वस्वगन्धं करोति यत्तद् गन्धनाम।

---

१०५. असंप्राप्तसृपाटिका संहननका लक्षण

जिसके कारण अस्थिबन्ध परस्पर असम्बद्ध होता है, उसे असम्प्राप्त-सृपाटिका संहनन कहते हैं।

१०६. वर्ण नामके पाँच भेद

श्वेत, पीत, हरित, अरुण तथा कृष्णके भेदसे वर्ण नाम पाँच प्रकार-का है।

१०७. वर्ण नाम कर्मका सामान्य लक्षण

अपने-अपने शरीरका श्वेत आदि वर्ण जिसके कारण होता है, उसे वर्ण नाम कहते हैं।

१०८. गन्ध नाम कर्मके दो भेद

सुगन्ध और दुर्गन्धके भेदसे गन्ध नाम दो प्रकारका है।

१०९. गन्ध नाम कर्मका सामान्य लक्षण

अपने-अपने शरीरकी गन्ध जिस कारण होती है, उसे गन्ध नाम कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[११०. रसनामकर्मणः पञ्च भेदाः]

तिक्तकटुकषायाम्लमधुरभेदाद्रसनाम पञ्चधा।

[१११. रसनामकर्मणः लक्षणम्]

तत्तत्स्वस्वशरीराणां यत्स्वस्वरसं करोति तद्रसनाम।

[११२. लवणो नाम षष्ठो रसः न पृथक्]

लवणो नाम रसो लौकिकैः षष्ठोऽस्ति। स मधुररसभेद एवेति परमागमे पृथक्त्वेन नोक्तः, लवणं विना इतररसानां स्वादुत्वाभावात्।

[११३. स्पर्शनामकर्मणः अष्टभेदाः]

मृदुकर्कशगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षभेदात्स्पर्शननामाष्टकम्।

---

११०. रस नामके पाँच भेद

तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल तथा मधुरके भेदसे रस नाम कर्मके पाँच भेद हैं।

१११. रस नाम कर्मका सामान्य लक्षण

अपने-अपने शरीरका जो अपना-अपना रस करता है, उसे रस नाम कर्म कहते हैं।

११२. लवण नामक छठा रस

लवण नामक छठा रस लोकमें माना जाता है। यह मधुर रसका ही भेद है, इसलिए परमागममें अलगसे नहीं कहा; क्योंकि नमकके बिना तो अन्य सभी रस फीके हैं।

११३. स्पर्श नाम कर्मके आठ भेद

मृदु, कर्कश, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध तथा रूक्षके भेदसे स्पर्श नाम कर्म आठ प्रकारका है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[११४. स्पर्शनामकर्मणः लक्षणम्]

तत्तत्स्वस्वशरीराणां स्वस्वस्पर्शं करोति ।

[११५. आनुपूर्विनामकर्मणः चत्वारो भेदाः]

नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवगत्यानुपूर्विभेदादानुपूर्विनाम चतुर्धा ।

[११६. आनुपूर्विनामकर्मणः लक्षणम्]

स्वस्वगतिगमने विग्रहतो त्यक्तपूर्वशरीराकारं करोति ।

[११७. अगुरुलघुनामकर्मणः लक्षणम्]

अगुरुलघुनाम स्वस्वशरीरं गुरुत्वलघुत्ववर्जितं करोति ।

[११८. उपघातनामकर्मणः लक्षणम्]

उपघातनाम स्वबाधाकारकं तुन्दादिशरीरावयवं करोति ।

---

११४. स्पर्श नाम कर्मका सामान्य लक्षण

स्पर्श नाम कर्म उस-उस अपने-अपने शरीरका अपना-अपना स्पर्श उत्पन्न करता है ।

११५. आनुपूर्वि नाम कर्मके भेद

नरकगत्यानुपूर्वि, तिर्यंग्गत्यानुपूर्वि, मनुष्यगत्यानुपूर्विके तथा देव-गत्यानुपूर्विके भेदसे आनुपूर्विके चार भेद हैं ।

११६. आनुपूर्वि का लक्षण

इसके कारण अपनी-अपनी गतिमें जानेके लिए विग्रहगतिमें पहले छोड़े गये शरीरका आकार होता है ।

११७. अगुरुलघु नाम कर्मका लक्षण

गुरुलघु नाम कर्म अपने-अपने शरीरको गुरुत्व और लघुत्वसे रहित करता है ।

११८. उपघात शरीर नाम कर्मका लक्षण

उपघात नाम कर्म अपनेको बाधा कारक तोंद आदि शरीरावयवोंको करता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[११९. परघातनामकर्मणः लक्षणम्]

परघातनाम परबाधाकारकं सर्पदंष्ट्रशृङ्गादिशरीरावयवं करोति।

[१२०. आतपनामकर्मणः लक्षणम्]

आतपनामोष्णप्रभां करोति तत् सूर्यबिम्बे बादरपर्याप्तपृथ्वीकायिके भवति।

[१२१. उद्योतनामकर्मणः लक्षणम्]

उद्योतनाम शीतलप्रभां करोति, तत् चन्द्रतारकादिबिम्बेषु तेजो-वायुसाधारणवर्जितचन्द्रतारकादिबिम्बजनितबादरपर्याप्ततिर्यग्जीवेषु भवति।

[१२२. उच्छ्वासनामकर्मणः लक्षणम्]

उच्छ्वासनाम उच्छ्वासनिःश्वासं करोति।

---

११९. परघात शरीरका लक्षण

परघात नाम कर्म दूसरोंको बाधा देनेवाले सर्पदाढ़, सींग आदि शरीरावयव करता है।

१२०. आतप नाम कर्मका लक्षण

आतप नाम कर्म उष्ण प्रभा करता है। वह सूर्य बिम्बमें स्थित बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवोंको होता है।

१२१. उद्योत नाम कर्मका लक्षण

उद्योत नाम कर्म शीतल प्रभा करता है। वह चन्द्र, तारागण आदि के बिम्बमें तथा तेजकायिक वायुकायिक साधारणकायिक जीवोंके सिवाय चन्द्रतारक आदि बिम्बमें होनेवाले बादरपर्याप्त तिर्यंच जीवोंमें होता है।

१२२. उच्छ्वास नाम कर्मका लक्षण

उच्छ्वास नाम कर्म उच्छ्वास और निःश्वासको करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१२३. विहायोगतिनामकर्मणः द्वौ भेदौ]

विहायोगतिनाम प्रशस्ताप्रशस्तभेदाद् द्विधा ।

[१२४. प्रशस्तविहायोगतेः लक्षणम्]

तत्र प्रशस्तविहायोगतिनाम मनोज्ञं गमनं करोति ।

[१२५. अप्रशस्तविहायोगतेः लक्षणम्]

अप्रशस्तविहायोगतिरप्रशस्तगमनं करोति ।

[१२६. त्रसनामकर्मणः लक्षणम्]

त्रसनाम द्वीन्द्रियादीनां चलनोद्वेजनादियुक्तं त्रसकायं करोति ।

[१२७. स्थावरनामकर्मणः लक्षणम्]

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावरनाम पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणां चलनोद्वेजनादिरहितस्थावरकायं करोति ।

---

१२३. विहायोगति नाम कर्मके भेद

विहायोगति नाम कर्म प्रशस्त और अप्रशस्तके भेदसे दो प्रकारका है ।

१२४. प्रशस्त विहायोगतिका लक्षण

प्रशस्त विहायोगति नाम कर्म मनोज्ञ गमन करता है ।

१२५. अप्रशस्त विहायोगतिका लक्षण

अप्रशस्त विहायोगति अप्रशस्त—अमनोज्ञ गमन करता है ।

१२६. त्रस नाम कर्मका लक्षण

त्रस नाम कर्म चलन, उद्वेजन आदि युक्त द्वीन्द्रिय आदि रूप त्रसकायको करता है ।

१२७. स्थावर नाम कर्मका लक्षण

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति, स्थावर नाम कर्म पृथ्वी आदि एकेन्द्रियोंके चलन, उद्वेजन आदि रहित स्थावरकायको करता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१२८. बादरनामकर्मणः लक्षणम्]

बादरनाम परैर्बाध्यमानं स्थूलशरीरं करोति।

[१२९. सूक्ष्मनामकर्मणः लक्षणम्]

सूक्ष्मनाम परैरबाध्यमानं सूक्ष्मशरीरं करोति।

[१३०. पर्याप्तनामकर्मणः लक्षणम्]

पर्याप्तनाम स्वस्वपर्याप्तीनां पूर्णतां करोति।

[१३१. अपर्याप्तनामकर्मणः लक्षणम्]

अपर्याप्तनाम स्वस्वपर्याप्तीनामपूर्णतां करोति।

[१३२. पर्याप्तीनां षड् भेदाः]

पर्याप्तयश्चाहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासनिःश्वासभाषामनःसंबन्धेन षोढा भवन्ति।

---

१२८. बादर नाम कर्मका लक्षण

बादर नाम कर्म दूसरोंके द्वारा बाधा दिये जाने योग्य स्थूल शरीरको करता है।

१२९. सूक्ष्म नाम कर्मका लक्षण

सूक्ष्म नाम कर्म दूसरोंके द्वारा बाधा न दिये जाने योग्य सूक्ष्म शरीर करता हैं।

१३०. पर्याप्त नाम कर्मका लक्षण

पर्याप्त नाम कर्म स्व-स्व पर्याप्तियोंकी पूर्णता को करता है।

१३१. अपर्याप्त नाम कर्मका लक्षण

अपर्याप्त नाम कर्म अपनी-अपनी पर्याप्तियों की अपूर्णता करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१३३. आहारपर्याप्तेर्लक्षणम्]

तत्राहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां खलरसभागरूपेण परिणमने आत्मनः शक्तिनिष्पत्तिराहारपर्याप्तिः ।

[१३४. शरीरपर्याप्तेर्लक्षणम्]

खलभागमस्थ्यादिकठिनावयवरूपेण, रसभागं रसरुधिरादिद्रवावयवरूपेण च परिणमयितुं जीवस्य शक्तिनिष्पत्तिः शरीरपर्याप्तिः ।

[१३५. इन्द्रियपर्याप्तेर्लक्षणम्]

स्पर्शनादीन्द्रियाणां योग्यदेशावस्थितस्वस्वविषयग्रहणे शक्तिनिष्पत्तिरिन्द्रियपर्याप्तिः ।

---

१३२. पर्याप्तियोंके छह भेद

आहार, शरीर, इन्द्रिय, उच्छ्वास-निश्वास, भाषा और मन ये पर्याप्तिके छह भेद हैं ।

१३३. आहार पर्याप्तिका लक्षण

आहार वर्गणा द्वारा प्राप्त पुद्गल स्कन्धोंका खल और रस भाग रूप परिणमनमें जीवकी शक्ति उत्पन्न होना आहार पर्याप्ति है ।

१३४. शरीरपर्याप्तिका लक्षण

खल भागको अस्थि आदि कठिन अवयव रूपसे तथा रस भागको रस, रुधिर आदि द्रव अवयव रूपसे परिणत करनेमें जीवकी शक्ति उत्पन्न होना शरीर पर्याप्ति है ।

१३५. इन्द्रिय पर्याप्तिका लक्षण

स्पर्शन आदि इन्द्रियोंके योग्य देशमें अवस्थित अपना-अपना विषय ग्रहण करनेमें शक्ति उत्पन्न होना इन्द्रिय पर्याप्ति है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१३६. उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्तेर्लक्षणम्]

आहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानुच्छ्वासनिःश्वासरूपेण परिणमयितुं जीवस्य शक्तिनिष्पत्तिरुच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्तिः ।

[१३७. भाषापर्याप्तेर्लक्षणम्]

भाषावर्गणायातपुद्गलस्कन्धान्सत्यादिचतुर्विधवाक्स्वरूपेण परिणमयितुं जीवस्य शक्तिनिष्पत्तिर्भाषापर्याप्तिः ।

[१३८. मनःपर्याप्तेर्लक्षणम्]

दृष्टश्रुतानुमितार्थानां गुणदोषविचारणादिरूपभावमनःपरिणमने मनोवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां द्रव्यमनोरूपपरिणामेन परिणमयितुं जीवस्य शक्तिनिष्पत्तिर्मनःपर्याप्तिः ।

---

१३६. उच्छ्वास-निश्वास पर्याप्तिका लक्षण

आहार वर्गणा-द्वारा प्राप्त पुद्गल स्कन्धोंको उच्छ्वास-निश्वास रूपसे परिणत करनेके लिए जीवकी शक्ति उत्पन्न होना उच्छ्वास-निश्वास पर्याप्ति है ।

१३७. भाषा पर्याप्तिका लक्षण

भाषा वर्गणा-द्वारा प्राप्त पुद्गल स्कन्धोंको सत्य आदि चार प्रकारकी वाक् रूपसे परिणत करनेके लिए जीवकी शक्ति उत्पन्न होना भाषा पर्याप्ति है ।

१३८. मनःपर्याप्तिका लक्षण

देखे, सुने, तथा अनुमित (अनुमानसे जाने गये) अर्थोंके गुण-दोष विचारणादि रूप भाव मनके परिणमनमें, मनोवर्गणा रूपसे प्राप्त पुद्गल स्कन्धोंके द्रव्य मन रूप परिणाम द्वारा परिणत करनेके लिए जीवकी शक्ति उत्पन्न होना मनःपर्याप्ति है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१३९. प्रत्येकशरीरस्य लक्षणम्]

प्रत्येकशरीरनामैकस्य जीवस्यैकशरीरस्वामित्वं करोति ।

[१४०. साधारणशरीरस्य लक्षणम्]

साधारणशरीरनामानन्तजीवानामेकशरीरस्वामित्वं करोति ।

[१४१. स्थिरनामकर्मणः लक्षणम्]

स्थिरनाम रसरुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणां सप्तधातूनामचलितत्वं करोति ।

[१४२. अस्थिरनामकर्मणः लक्षणम्]

अस्थिरनाम तेषां चलितत्वं करोति ।

[१४३. शुभनामकर्मणः लक्षणम्]

शुभनाम मस्तकादिप्रशस्तावयवं करोति ।

---

१३९. प्रत्येक शरीरका लक्षण

प्रत्येक शरीर नाम कर्म एक जीवको एक शरीरका स्वामी करता है ।

१४०. साधारण शरीरका लक्षण

साधारण शरीर नामकर्म अनन्त जीवोंको एक शरीरका स्वामो करता है ।

१४१. स्थिर नाम कर्मका लक्षण

स्थिर नाम कर्म रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र इन सात धातुओंकी स्थिरताको करता है ।

१४२. अस्थिर नाम कर्मका लक्षण

अस्थिर नाम कर्म उपर्युक्त सप्त धातुओंकी अस्थिरता करता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१४४. अशुभनामकर्मणः लक्षणम्]

अशुभनामापानाद्यप्रशस्तावयवं करोति ।

[१४५. सुभगनामकर्मणः लक्षणम्]

सुभगनाम परेषां रुचिरत्वं करोति ।

[१४६. दुर्भगनामकर्मणः लक्षणम्]

दुर्भगनामारुचिरत्वं करोति ।

[१४७. सुस्वरनामकर्मणः लक्षणम्]

सुस्वरनाम श्रवणरमणीयस्वरं करोति ।

[१४८. दुस्स्वरनामकर्मणः लक्षणम्]

दुस्स्वरं नाम श्रवणदुस्सहं स्वरं करोति ।

---

१४३. शुभ नाम कर्मका लक्षण

शुभ नाम कर्म मस्तक आदि प्रशस्त अवयव करता है ।

१४४. अशुभ नाम कर्मका लक्षण

अशुभ नाम कर्म अपान आदि अप्रशस्त अवयवोंको करता है ।

१४५. सुभग नाम कर्मका लक्षण

सुभग नाम कर्म दूसरोंकी रुचिरता करता है ।

१४६. दुर्भग नाम कर्मका लक्षण

दुर्भग नाम कर्म दूसरोंकी अरुचि करता है

१४७. सुस्वर नाम कर्मका लक्षण

सुस्वर नाम कर्म कर्णप्रिय स्वर करता है ।

१४८. दुःस्वर नाम कर्मका लक्षण

दुःस्वर नाम कर्म कानोंको दुःसह स्वर करता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१४९. आदेयनामकर्मणः लक्षणम्]

आदेयनाम परैर्मान्यतां करोति ।

[१५०. अनादेयनामकर्मणः लक्षणम्]

अनादेयनामामान्यतां करोति ।

[१५१. यशस्कीर्तिनामकर्मणः लक्षणम्]

यशस्कीर्तिनाम गुणकीर्तनं करोति ।

[१५२. अयशस्कीर्तिनामकर्मणः लक्षणम्]

अयशस्कीर्तिनाम दोषकीर्तनं करोति ।

[१५३. निर्माणनामकर्मणः लक्षणम्]

निर्माणनाम शरीरवत् स्वस्वस्थानेषु स्वस्थितानुप्राञ्जलित्वं करोति ।

---

१४९. आदेय नाम कर्मका लक्षण

आदेय नाम कर्म दूसरोंके द्वारा मान्यता करता है ।

१५०. अनादेय नाम कर्मका लक्षण

अनादेय नाम कर्म अमान्यता करता है ।

१५१. यशस्कीर्ति नाम कर्मका लक्षण

यशस्कीर्ति नाम कर्म गुणकीर्तन करता है ।

१५२. अयशस्कीर्ति नाम कर्मका लक्षण

अयशस्कीर्ति दोषकीर्तन (बदनामी) करता है ।

१५३. निर्माण नाम कर्मका लक्षण

निर्माण नामकर्म शरीरके अनुसार स्व-स्व स्थानोंमें शरीरावयवोंका उचित निर्माण करता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१५४. तीर्थंकरत्वनामकर्मणः लक्षणम्]

तीर्थंकरत्वं नाम पञ्चकल्याणचतुस्त्रिंशदतिशयाष्टमहाप्रातिहार्यसमवशरणादिबहुविधौचित्यविभूतिसंयुक्तार्हन्त्यलक्ष्मीं करोति ।

गोत्रम्

[१५५. गोत्रकर्मणः द्वौ भेदौ]

उच्चनीचभेदाद् गोत्रकर्म द्विधा ।

[१५६. उच्चगोत्रस्य लक्षणम्]

तत्र महाव्रताचरणयोग्योत्तमकुलकारणमुच्चैर्गोत्रम् ।

[१५७. नीचगोत्रस्य लक्षणम्]

तद्विपरीताचरणयोग्यनीचकुलकारणं नीचैर्गोत्रम् ।

---

१५४. तीर्थंकर नामकर्म

तीर्थंकर नाम कर्म पंच कल्याणक, चौंतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य तथा समवशरण आदि अनेक प्रकारकी उचित विभूतिसे युक्त आर्हन्त्य लक्ष्मीको करता है ।

१५५. गोत्र कर्मके भेद

उच्च और नीचके भेदसे गोत्र कर्म दो प्रकारका है ।

१५६. उच्च गोत्र कर्मका लक्षण

महाव्रतोंके आचरण योग्य उत्तम कुलका कारण उच्च गोत्र कर्म कहलाता है ।

१५७. नीच गोत्र कर्मका लक्षण

ऊपर बतायेके विपरीत आचरण योग्य नीच कुलका कारण नीच गोत्र है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तरायम्

[१५८. अन्तरायकर्मणः पञ्च भेदाः]

दानलाभभोगोपभोगवीर्याश्रयभेदादन्तरायकर्म पञ्चधा ।

[१५९. दानान्तरायस्य लक्षणम्]

तत्र दानस्य विघ्नहेतुर्दानान्तरायम् ।

[१६०. लाभान्तरायस्य लक्षणम्]

लाभस्य विघ्नहेतुर्लाभान्तरायम् ।

[१६१. भोगान्तरायस्य लक्षणम्]

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगस्तस्य विघ्नहेतुर्भोगान्तरायम् ।

---

१५८. अन्तराय कर्मके भेद

दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय तथा वीर्यान्तरायके भेदसे अन्तराय कर्म पाँच प्रकारका है ।

१५९. दानान्तरायका लक्षण

दानके विघ्नका कारण दानान्तराय होता है ।

१६०. लाभान्तरायका लक्षण

लाभके विघ्नका कारण लाभान्तराय है ।

१६१. भोगान्तरायका लक्षण

जो एक बार भोग कर छोड़ दिया जाता है उसे भोग कहते हैं । भोगोंके अन्तरायका कारण भोगान्तराय है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१६२. उपभोगान्तरायस्य लक्षणम्]

भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्य उपभोगस्तस्य विघ्नहेतुरुपभोगान्तरायम् ।

[१६३. वीर्यान्तरायस्य लक्षणम्]

वीर्यं शक्तिः सामर्थ्यं तस्य विघ्नहेतुर्वीर्यान्तरायम् ।

[१६४. उत्तरप्रकृतिबन्धस्य समाप्तिः]

एवमुत्तरप्रकृतिबन्धः कथितः ।

[१६५. उत्तरोत्तरप्रकृतिबन्धस्यागोचरत्वम्]

उत्तरोत्तरप्रकृतिबन्धोऽगोचरो भवति ।

●

---

१६२. उपभोगान्तरायका लक्षण

एक बार भोगकर पुनः भोगने योग्य उपभोग कहलाता है, उसके विघ्नका कारण उपभोगान्तराय है ।

१६३. वीर्यान्तरायका लक्षण

शक्ति या सामर्थ्य वीर्य है, उसके विघ्नका कारण वीर्यान्तराय है ।

१६४. उत्तर प्रकृति-बन्धका उपसंहार

इस प्रकार उत्तर प्रकृति-बन्ध कहा ।

१६५. उत्तरोत्तर प्रकृति-बन्ध

उत्तरोत्तर प्रकृति-बन्ध अगोचर है ।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थितिबन्धः

[१६६. स्थितिवन्धकथनम्]

अथ ास्थितिबन्ध उच्यते ।

[१६७. स्थितिवन्धस्य लक्षणम्]

ज्ञानावरणीयादिप्रकृतीनां ज्ञानप्रच्छादनादिस्वस्वभावापरित्यागेनाव-स्थानं स्थितिः ।

[१६८. स्थितिवन्धस्य समयः]

तत्कालश्चोपचारात् ।

[१६९. ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयवेदनीयान्तरायस्य चोत्कृष्टा स्थितिः]

तद्यथा ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयवेदनीयान्तरायप्रकृतीनामुत्कृष्टा स्थितिस्त्रिंशत्कोटिकोटिसागरोपमप्रमिता ।

---

१६६. स्थितिवन्धका कथन

अब स्थिति बन्ध कहते हैं ।

१६७. स्थितिबन्धका लक्षण

ज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियोंका ज्ञानको ढँकने आदि रूप अपने स्वभाव को न छोड़ते हुए स्थित रहना स्थिति है ।

१६८. स्थितिवन्धका काल

उसके कालको उपचारसे स्थितिवन्ध कहा जाता है ।

१६९. ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय तथा अन्तरायकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटि-कोटि सागर प्रमाण है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१७०. दर्शनमोहनीयस्योत्कृष्टा स्थितिः]

दर्शनमोहनीयस्य सप्ततिः कोटिकोटिसागरोपमप्रमाणा।

[१७१. चारित्रमोहनीयस्योत्कृष्टा स्थितिः]

चारित्रमोहनीयस्य चत्वारिंशत्कोटिकोटिसागरोपमप्रमिता।

[१७२. नामगोत्रयोरुत्कृष्टा स्थितिः]

नामगोत्रयोर्विंशतिकोटिकोटिसागरोपमप्रमात्री।

[१७३. आयुकर्मणः उत्कृष्टा स्थितिः]

आयुष्यकर्मणस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा। इत्युत्कृष्टस्थितिरुक्ता।

[१७४. वेदनीयस्य जघन्यस्थितिः]

वेदनीयस्य जघन्यस्थितिर्द्वादशमुहूर्ता।

---

१७०. दर्शन मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति

दर्शन मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटि-कोटि सागर प्रमाण है।

१७१. चारित्र मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति

चारित्र मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोटि-कोटि सागर प्रमाण है।

१७२. नाम और गोत्रकी उत्कृष्ट स्थिति

नाम और गोत्रकी उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटिकोटि सागर प्रमाण है।

१७३. आयु कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति

आयु कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है।
इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति कही।

१७४. वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति

वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१७५. नामगोत्रयोः जघन्यस्थितिः]

नामगोत्रयोरष्टौ मुहूर्ता ।

[१७६. शेषाणां जघन्यस्थितिः]

शेषाणां ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयमोहनीयायुष्यान्तरायाणां जघन्यस्थितिरन्तर्मुहूर्ता ।

[१७७. सर्वेषां कर्मणां स्थितिः]

सर्वेषां कर्मणां स्थितिर्नानाविकल्पा ।

[१७८. स्थितिवन्धकथनस्य उपसंहारः]

इति स्थितिरुक्ता ।

●

---

१७५. नाम और गोत्रकी जघन्य स्थिति

नाम और गोत्रकी जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त है।

१७६. शेष कर्मोंकी जघन्य स्थिति

शेष ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, आयु तथा अन्तरायकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।

१७७. सभी कर्मोंकी स्थिति

सभी कर्मोंकी स्थिति नाना प्रकार की है।

१७८. स्थितिवन्धका उपसंहार

इस प्रकार स्थितिवन्ध कहा।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३४६०

अनुभागबन्धः

[१७९. अनुभागबन्धकथनस्य प्रतिज्ञा]

अथानुभाग उच्यते ।

[१८०. अनुभागबन्धस्य लक्षणम्]

कर्मप्रकृतीनां तीव्रमन्दमध्यमशक्तिविशेषोऽनुभागः ।

[१८१. घातिकर्मणामनुभागः]

घातिकर्मणामनुभागो लतादार्वस्थिशैलसमानचतुःस्थानः ।

[१८२. अघातिकर्मणामनुभागः]

अघातिकर्मणामशुभप्रकृतीनामनुभागो निम्बकाञ्चेरविषहालाहल-सदृशचतुःस्थानः, शुभप्रकृतीनामनुभागो गुडखाण्डशर्करामृतसमान-चतुःस्थानः ।

---

१७९. अनुभाग बन्ध कहनेकी प्रतिज्ञा

अब अनुभाग बन्ध कहते हैं ।

१८०. अनुभाग बन्धका लक्षण

कर्मप्रकृतियोंकी तीव्र, मन्द, मध्यम शक्ति विशेषसे अनुभाग कहा है ।

१८१. घाति कर्मोंका अनुभाग

घाति कर्मोंका अनुभाग लता, दारु (काष्ठ), अस्थि तथा शिला-के समान चार प्रकार है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१८३. अनुभागबन्धकथनस्योपसंहारः]

इत्यनुभाग उक्तः ।

---

१८२. अघाति कर्मोंका अनुभाग

अघाति कर्मोंकी अशुभ प्रकृतियोंका अनुभाग नीम, कांजीर, विष, और हालाहलके समान चार प्रकारका तथा शुभ प्रकृतियोंका अनुभाग गुड़, खाँड, शर्करा तथा अमृतके समान चार प्रकारका है ।

१८३. अनुभाग बन्ध कथनका उपसंहार

इस प्रकार अनुभाग बन्ध कहा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रदेशबन्धः

[१८४. प्रदेशबन्धकथनस्य प्रतिज्ञा]

अथ प्रदेश उच्यते ।

[१८५. प्रदेशबन्धस्य लक्षणम्]

आत्मप्रदेशेषु द्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्राणि सिद्धराश्यनन्तैक-भागप्रमितानामभव्यजीवस्यानन्तगुणानां सर्वकर्मपरमाणूनां पर-स्परप्रदेशानुप्रवेशलक्षणः प्रदेशबन्धः ।

[१८६. प्रदेशबन्धस्योपसंहारः]

इति प्रदेशबन्ध उक्तः ।

---

१८४. प्रदेश बन्ध कथनकी प्रतिज्ञा

आगे प्रदेशबन्ध कहते हैं ।

१८५. प्रदेशबन्ध का लक्षण

आत्माके प्रदेशोंमें डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्रकी सत्ता रहती है तथा प्रति समय सिद्धराशिके अनन्तवें भाग प्रमाण या अभव्य जीवोंके अनन्तगुणें समस्त कर्म परमाणुओंका परस्पर प्रदेशों-में अनुप्रवेश होना प्रदेशबन्ध है ।

१८६. प्रदेशबन्ध कथनका उपसंहार

इस प्रकार प्रदेशबन्ध कहा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१८७. द्रव्यकर्मणामुपसंहारः]

एवं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशविकल्पानि पौद्गलिकानि द्रव्यकर्माणि कथितानि ।

---

१८७. द्रव्यकर्मोंके कथनका उपसंहार

इस प्रकार प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेशके भेदसे पौद्गलिक द्रव्य कर्म कहे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावकर्म

[१८८. भावकर्मणः लक्षणम्]

उक्तज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मोदयजनिता आत्मनोऽज्ञानरागमिथ्यादर्शनादिपरिणामविशेषा भावकर्माणि ।

[१८९. भावकर्मणां परिमाणम्]

तान्यप्यसंख्यातलोकमात्राणि भवन्ति ।

●

---

१८८. भाव कर्मका लक्षण

उक्त ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मोंके उदयसे होनेवाले आत्माके अज्ञान, राग, मिथ्यादर्शन आदि परिणामविशेष भाव कर्म हैं ।

१८९. भाव कर्मोंका परिमाण

वे भाव कर्म असंख्यात लोक प्रमाण हैं ।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नोकर्म

[१९०. नोकर्मणः लक्षणम्]

औदारिकवैक्रियकाहारकतैजसशरीरपरिणमनपुद्गलस्कन्धा नोकर्मद्रव्याणि।

[१९१. संसारिजीवस्य लक्षणम्]

एवंविधद्रव्यभावनोकर्मसंयुक्ताः पञ्चविधसंसरणपरिणताश्चतसृषु गतिषु परिवर्तमानजीवास्संसारिणः।

[१९२. मुक्तजीवस्य लक्षणम्]

तत्कर्मत्रयमुक्तास्सिद्धगतावबस्थिताः क्षायिकसम्यक्त्वज्ञानदर्शनवीर्यसूक्ष्मत्वावगाहनागुरुलघुत्वाव्याबाधरूपाष्टगुणपरिणताः सिद्धपरिमेष्ठिनो जीवा मुक्ताः।

---

१९०. नोकर्मका लक्षण

औदारिक, वैक्रियक, आहारक तथा तैजस शरीरके रूपमें परिणत पुद्गल स्कन्ध नोकर्म द्रव्य हैं।

१९१. संसारी जीवका लक्षण

इस प्रकार द्रव्य कर्म, भाव कर्म तथा नोकर्मसे युक्त, पाँच प्रकारके परिवर्तनोंमें परिणत तथा चार गतियोंमें भ्रमण करते हुए जीव संसारी हैं।

१९२. मुक्त जीवका लक्षण

उक्त तीन प्रकारके कर्मोंसे मुक्त, सिद्ध गतिमें स्थित, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व तथा अव्याबाधत्वरूप अष्ट गुण परिणत सिद्ध परमेष्ठी मुक्त जीव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१९३. संसारिजीवानां द्वौ भेदौ]

तत्र संसारिणो जीवा भव्याभव्यभेदेन द्विधा।

[१९४. भव्यजीवस्य लक्षणम्]

तत्र रत्नत्रयसामग्र्याः सकलकर्मक्षयं कृत्वानन्तज्ञानादिस्वरूपोपलब्धि-भवनयोग्यशक्तिविशेषसहिता भव्याः।

[१९५. भव्यजीवानां चतुर्दशगुणस्थानानि]

तत्र चतुर्दशगुणस्थानवर्तिनो भव्याः।

[१९६. अभव्यजीवस्य लक्षणम्]

एकस्मान्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादनिवर्तमाना अभव्याः।

---

१९३. संसारी जीवोंके दो भेद

संसारी जीव भव्य और अभव्यके भेदसे दो प्रकारके हैं।

१९४. भव्य जीवका लक्षण

रत्नत्रय रूप सामग्रीके द्वारा समस्त कर्मक्षय करके अनन्त-ज्ञान आदि स्वरूप प्राप्ति होने योग्य शक्ति विशेषसे सहित जीव भव्य जीव कहलाते हैं।

१९५. भव्य जीवोंके चौदह गुणस्थान

चौदह गुणस्थानोंमें स्थित भव्य होते हैं।

१९६. अभव्य जीवका लक्षण

केवल एक मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही रहनेवाले अभव्य जीव होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१९७. अभव्यानां करणत्रयाभावः]

तेषां कदाचिदपि सम्यग्दर्शनप्राप्तिकारणकरणत्रयविधानासंभवात् ।

[१९८. मिथ्यात्वगुणस्थानम्]

तत्र दर्शनमोहनीयस्य मिथ्यात्वप्रकृतेरुदयादतत्त्वश्रद्धानरूपमिथ्यादर्शनपरिणतस्सर्वज्ञवीतरागप्रणीतं जीवादितत्त्वमश्रद्धानस्संशयानो वान्यप्रणीतमतत्त्वं श्रद्दधानो वा जीवो मिथ्यादृष्टिरिति प्रथमगुणस्थानवर्ती भवति ।

[१९९. मिथ्यादृष्टेः सम्यक्त्वस्य विधानम्]

अनादिमिथ्यादृष्टिर्वा सादिमिथ्यादृष्टिर्वा लब्धिपञ्चकसंनिधाने प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृह्णाति ।

---

१९७. अभव्योंके करणत्रयका अभाव

उनके कभी भी सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके कारण करणत्रय होना असंभव है ।

१९८. मिथ्यात्व गुणस्थान

दर्शन मोहनीयकी मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे अतत्त्वश्रद्धान रूप मिथ्यादर्शनसे युक्त, सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत जीव आदि तत्त्वोंका अश्रद्धान करनेवाला अथवा संशय करनेवाला, या अन्य प्रणीत अतत्त्वोंका श्रद्धान करनेवाला जीव मिथ्यादृष्टि नामक प्रथम गुणस्थानवर्ती होता है ।

१९९. मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वका विधान

अनादि मिथ्यादृष्टि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि पाँच लब्धियोंके सद्भावमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२००. क्षयोपशमलब्धिः]

तद्यथा कदाचित्कस्यचिज्जीवस्याशुभकर्मणामनुभागः प्रतिसमयमनन्तगुणहान्युदेति, इति तेषां सर्वघातिस्पर्धकानामनन्तगुणहानिं विधाय तद्द्रव्यस्य सदवस्था उपशमः, अनन्तहीनानुभागोदये सत्यपि क्षयोपशम इत्युच्यते। तस्य लब्धिः क्षयोपलब्धिः।

[२०१. विशुद्धिलब्धिः]

क्षयोपशमलब्धौ सत्यामुत्पन्नस्सातादिप्रशस्तप्रकृतिबन्धकारणं जीवस्य यो विशुद्धिपरिणामस्तल्लाभो विशुद्धिलब्धिः।

[२०२. देशनालब्धिः]

षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थानामुपदेशकारकाचार्योपाध्यायदेशनालाभः, उपदेशकरहितक्षेत्रे पूर्वोपदिष्टजीवादितत्त्वधारणस्मरणलाभो वा देशनालब्धिः।

---

२००. क्षयोपशमलब्धि

कभी किसी जीवके अशुभ कर्मोंका अनुभाग प्रतिसमय अनन्त गुण हानि क्रमसे उदित होता है। इस प्रकार उन सर्वघाति स्पर्धकोंकी अनन्त गुणहानि करके उस द्रव्यका सदवस्था रूप उपशम अनन्त हीन अनुभागके उदय होनेपर भी क्षयोपशम कहलाता है। उसकी लब्धि क्षयोपशमलब्धि है।

२०१. विशुद्धिलब्धि

सातादि प्रशस्त प्रकृतियोंके बन्धका कारण जीवका जो विशुद्धि परिणाम क्षयोपशम लब्धिके होनेपर उत्पन्न होता है उसका लाभ विशुद्धिलब्धि है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२०३. प्रायोग्यतालब्धिः]

आयुर्वर्जितसप्तकर्मणामुत्कृष्टस्थितिं विशुद्धिपरिणामविशेषेण खण्डयित्वान्तःकोटिकोटिस्थितिं स्थापयति, लतादार्वस्थिशैलरूपघातिकर्मानुभागं खण्डयित्वा लतादारुरूपद्विस्थानं स्थापयति, तद्विशुद्धिपरिणामयोग्यतालाभः प्रायोग्यतालब्धिः ।

[२०४. करणलब्धिः]

दर्शनमोहोपशमनादिकरणविशुद्धपरिणामः करण इत्युच्यते । तल्लाभः करणलब्धिः ।

---

२०२. देशनालब्धि

छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, तथा नव पदार्थोंके उपदेश करनेवाले आचार्य, उपाध्यायकी देशनाका लाभ अथवा उपदेशक रहित क्षेत्रमें पूर्व उपदिष्ट जीव-आदि तत्त्वोंके धारण, स्मरणका लाभ देशनालब्धि है।

२०३. प्रायोग्यतालब्धि

आयुको छोड़कर शेष सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिको विशुद्धि परिणाम-विशेष-द्वारा खण्डित करके अन्तःकोटिकोटि प्रमाण स्थितिमें स्थापित करना । तथा लता, दारु (काष्ठ), अस्थि, शैलरूप घाति कर्मोंके अनुभागको खण्डित करके लता, दारुरूप दो स्थानोंमें स्थापित करना है। इस प्रकारकी विशुद्धिरूप परिणामोंकी योग्यताका लाभ प्रायोग्यतालब्धि है।

२०४. करणलब्धि

दर्शन मोहके उपशम आदि करनेवाला विशुद्धि परिणाम करण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२०५. करणस्य त्रयो भेदाः]

स च करणोऽधःप्रवृत्तकरणोऽपूर्वकरणोऽनिवृत्तिकरणश्चेति त्रिधा ।

[२०६. अधःप्रवृत्तकरणस्य कालः]

तत्राधःप्रवृत्तकरणकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रः ।।२७७७।।

[२०७. अपूर्वकरणस्य कालः]

ततः संख्येयगुणहीनोऽपूर्वकरणकालः ।।२७७।।

[२०८. अनिवृत्तिकरणस्य कालः]

ततः संख्येयगुणहीनोऽनिवृत्तिकरणकालः ।।२७।।

[२०९. त्रयाणां करणानां कालः]

त्रितयं समुदितमप्यन्तर्मुहूर्तकाल एव ।

---

२०५. करणके तीन भेद

वह करण अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरणके भेदसे तीन प्रकारका है ।

२०६. अधःप्रवृत्तकरणका काल

अधःप्रवृत्तकरणका काल अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है।

२०७. अपूर्वकरणका काल

उससे संख्यात गुणहीन अपूर्वकरणका काल है ।

२०८. अनिवृत्तिकरणका काल

उससे संख्यात गुणहीन अनिवृत्तिकरणका काल है ।

२०९. तीनों करणोंका सम्मिलित काल

तीनों करणोंका सम्मिलित काल भी अन्तर्मुहूर्त्त ही है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२१०. करणत्रयेषु विशुद्धिः]

अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारभ्य विशुद्धिः प्रतिसमयमनन्तगुणा अप्यनिवृत्तिकरणचरमसमयं वर्तन्ते।

[२११. अधःप्रवृत्तकरणकाले विशुद्धिपरिणामः]

तत्राधःप्रवृत्तकरणकाले संख्यातलोकमात्रविशुद्धिपरिणामविकल्पा जघन्यमध्यमोत्कृष्टाः सन्ति।

[२१२. अधःप्रवृत्तकरणस्याङ्कसंदृष्टिः]

तत्राङ्कसंदृष्ट्याधःप्रवृत्तकरणलक्षणमुच्यते—प्रथमसमयनानाजीवानां विशुद्धिपरिणामविकल्पानां जघन्यखण्डमिदम् ३९। अस्माद्द्वितीयं खण्डं विशेषाधिकम् ४०। तृतीयं विशेषाधिकं ४१। एवं चरमचतुर्थ-खण्डं विशेषाधिकं ४२। द्वितीयसमये जघन्यखण्डं प्रथमसमयजघन्य-खण्डाद्विशेषाधिकम् ४०। ततो द्वितीयखण्डं विशेषाधिकं ४१।

---

२१०. करणत्रयमें विशुद्धि

अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे आरम्भ करके विशुद्धि प्रति समय अनन्तगुणी होकर भी अनिवृत्तिकरणके चरम समय तक रहती है।

२११. अधःप्रवृत्तकरण कालमें विशुद्धि परिणाम

अधःप्रवृत्तकरणके समयमें असंख्यात लोकमात्र विशुद्धि परिणाम विकल्प जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट होते हैं।

२१२. अधःप्रवृत्तकरणकी अंक संदृष्टि

अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण कहते हैं—प्रथम समयमें नाना जीवोंके विशुद्धि परिणाम विकल्पोंका जघन्य खण्ड ३९ है। इससे द्वितीय खण्ड विशेष अधिक है ४०। इससे तीसरा विशेष अधिक है ४१। इसी प्रकार अन्तिम चौथा खण्ड भी विशेष अधिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ततस्तृतीयखण्डं विशेषाधिकं ४२। एवं चरमखण्डं विशेषाधिकं ४३। एवं तृतीयादिसमयेषु जघन्यादिखण्डानि विशेषाधिकानि भवन्ति। ये केषांचिज्जीवानामुपरिमसमयपरिणमनवर्तिनां विशुद्धिपरिणाम-विकल्पा अधःस्तनसमयवर्तिनां केषांचिज्जीवानां विशुद्धिपरिणाम-विकल्पैस्सह सदृशास्सन्तीत्यधःप्रवृत्तकरणसंज्ञा युक्ता। तत्र प्रथम-समयजघन्यखण्डं चरमसमयचरमखण्डं च केनापि जघन्योत्कृष्टेन सदृशं न भवति, तथापि तद्द्वयं विहायेतरेषां सर्वेषां खण्डानामुपर्य-धश्च सादृश्यमस्तीति, तेनाधःप्रवृत्तकरणसंज्ञा न विरुध्यते। अस्मि-न्नधःप्रवृत्तकरणे प्रशस्तप्रकृतीनामनुभागः प्रतिसमयेऽनन्तगुणं वर्धते, अप्रशस्तप्रकृतीनामनुभागः प्रतिसमयमनन्तगुणहीनो भवति, संख्यातसहस्रस्थितिबन्धापसरणानि भवन्ति, प्रतिसमयमनन्तगुण-वृद्धया विशुद्धिश्च वर्तते, इत्येतानि चत्वार्यावश्यकानि सन्ति।

है ४२। द्वितीय समयमें जघन्य खण्ड प्रथम समयके जघन्य खण्डसे विशेष अधिक है ४०। उससे द्वितीय खण्ड विशेष अधिक है ४१। उससे तृतीय खण्ड विशेष अधिक है ४२। इसी प्रकार अन्तिम चौथा खण्ड विशेष है ४३। इस प्रकार तृतीय आदि समयोंमें तथा अन्तिम समयमें जघन्य आदि खण्ड विशेष अधिक होते हैं। जो किन्हीं जीवोंके ऊपरके समयमें परिणमन करनेवाले विशुद्धि परिणाम विकल्प निम्न समयवर्ती किन्हीं जीवोंके विशुद्धि परिणाम विकल्पोंके साथ समान होते हैं। इसलिए इसकी अधःप्रवृत्तकरण संज्ञा उचित है। यद्यपि प्रथम समयका जघन्य खण्ड तथा अन्तिम समयका अन्तिम खण्ड किसी भी जघन्य या उत्कृष्ट खण्डके सदृश नहीं होता, फिर भी उन दोनोंको छोड़कर अन्य सभी खण्डोंका ऊपर तथा नीचे सादृश्य है, इसलिए अधःप्रवृत्तकरण कहनेमें विरोध नहीं आता। इस अधःप्रवृत्तकरणमें—प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग प्रति समय अनन्तगुणा बढ़ता है तथा अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग प्रति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुनर्गुणश्रेणिनिर्जरागुणसंक्रमस्थितिकाण्डकघातानुभागकाण्डकघाताश्चेति चत्वार्यावश्यकानि न सन्ति, तत्कारणविशुद्धिविशेषाभावात् ।

[२१३. अपूर्वकरणम्]

ततः परमपूर्वकरणप्रथमसमये गुणश्रेणिनिर्जरागुणसंक्रमस्थितिकाण्डकघाताश्च प्रारभ्यन्ते । अत्रापि जघन्यमध्यमोत्कृष्टा विशुद्धिपरिणामा अधःप्रवृत्तपरिणामेभ्यो संख्यातलोकगुणिताः सन्ति । तत्र प्रथमसमयवर्तिनानाजीवविशुद्धिपरिणामा असंख्यातलोकमाता अङ्कसंदृष्ट्या ४५६। एते सर्वेऽप्येकेनैव खण्डं बहुखण्डानीव सन्ति । उपरितनसमयपरिणामैस्सादृश्याभावात् । द्वितीयसमयपरिणामा विशेषाधिकाः ४७२। एतेऽप्येकमेव खण्डम् । उपर्यधोऽधत्वसादृश्याभावाद्बहुखण्डाभावः ।

समय अनन्तगुणा हीन होता है । संख्यात सहस्र स्थितिबन्धापसरण होते हैं तथा प्रति समय अनन्तगुणी वृद्धिके हिसाबसे विशुद्धि होती है ।—ये चार आवश्यक होते हैं । किन्तु गुणश्रेणी निर्जरा, गुणसंक्रम, स्थितिकाण्डकघात तथा अनुभागकाण्डकघात, ये चार आवश्यक नहीं होते हैं; क्योंकि इनके कारण विशुद्धि-विशेषरूप परिणामोंका अभाव है ।

२१३. अपूर्वकरण

इसके बाद अपूर्वकरणके प्रथम समयमें गुणश्रेणि निर्जरा, गुणसंक्रम, स्थिति काण्डकघात तथा अनुभाग काण्डकघात प्रारम्भ होते हैं । यहाँ भी जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट विशुद्धि परिणाम अध:प्रवृत्तकरणके परिणामोंसे असंख्यात लोक गुणे होते हैं । यहाँ प्रथम समयवर्ती नाना जीवों के विशुद्धि परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं । उनकी अंक संदृष्टि ४५६ है । ये सभी एक ही खण्डसे बहुत खण्डोंकी तरह होते हैं क्योंकि ऊपरके समयवर्ती परिणामोंके साथ सादृश्यका अभाव है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं तृतीयादिसमयेष्वाचरमसमयं विशुद्धिपरिणामा एकैकखण्डं कृताः विशेषाधिकाः सन्ति। अत एव कारणात्पूर्वपूर्वसमयोऽप्रवृत्ता एव विशुद्धिपरिणामा उत्तरसमये भवन्तीत्यपूर्वकरणसंज्ञा युक्ता। तस्याङ्कसंदृष्टिः –

५	६	७
५	५	२
५	३	६
५	२	०
५	०	४
४	८	८
४	७	२
४	५	६

द्वितीय समयवर्ती परिणाम विशेष अधिक होते हैं ४७२। ये भी एक ही खण्ड हैं। ऊपर और नीचे अधत्वके सादृश्यका अभाव होनेसे बहुत खण्ड नहीं होते। इसी प्रकार तृतीय आदि समयोंमें चरम समय पर्यन्त विशुद्धि परिणाम एक-एक खण्ड करके ही विशेष अधिक होते हैं। इसी कारणसे पूर्व पूर्व समयमें नहीं हुए अप्रवृत्त ही विशुद्धि परिणाम उत्तर समयमें होते हैं, इसलिए अपूर्वकरण कहना उचित है। इसकी अंक संदृष्टि ऊपर दी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२१४. अनिवृत्तिकरणम्]

ततः परमनिवृत्तिकरणप्रथमसमये नानाजीवानां विशुद्धिपरिणामोऽपूर्वकरणे चरमसमयसर्वोत्कृष्टविशुद्धिपरिणामादनन्तगुणविशुद्धिर्जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पाभावादेकादृश एव। द्वितीयसमयेऽपि प्रथमसमयविशुद्धेरनन्तगुणविशुद्धिर्नानाजीवानामेकादृश एव विशुद्धिपरिणामो भवति। एवं तृतीयादिसमयेष्वनिवृत्तिकरणचरमसमयं प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धया विशुद्धया वर्धमानोऽपि नानाजीवानां विशुद्धिपरिणामो जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहित एकादृश एव भवति। अत एव कारणान्निवृत्तिभेदो जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पपरिणामस्य नास्तीत्यनिवृत्तिकरणसंज्ञा युक्ता।

[२१५. अनिवृत्तिकरणस्य विशेषः]

तस्यानिवृत्तिकरणस्य चरमसमये भव्यश्चातुर्गतिको मिथ्यादृष्टिः संज्ञी पंचेन्द्रियपर्याप्तो गर्भजो विशुद्धिवर्धमानः शुभलेश्यो जाग्रदव-

---

२१४. अनिवृत्तिकरण

इसके बाद अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें नाना जीवोंके विशुद्धि परिणाम अपूर्वकरण में चरम समय सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि परिणामोंसे अनन्तगुणे विशुद्ध जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट विकल्पोंके न होनेके कारण एक सदृश ही होते हैं। द्वितीय समयमें भी प्रथम समयकी विशुद्धिसे अनन्तगुणी विशुद्धियुक्त नाना जीवों के विशुद्धि परिणाम एक सदृश ही होते हैं। इसी प्रकार तृतीय आदि समयोंमें अनिवृत्तिकरणके चरम समय पर्यंन्त प्रति समय अनन्तगुणी वृद्धि युक्त विशुद्धिसे बढ़ने वाले भी नाना जीवोंके विशुद्धि परिणाम जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट विकल्प रहित एक सदृश ही होते हैं। इसी कारणसे जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट परिणामोंमें निवृत्ति-भेद नहीं है, इसलिए अनिवृत्तिकरण कहना उचित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थितो ज्ञानोपयोगवान् अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभान्मिथ्यात्व-सम्यङ्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिश्चोपशमय्य प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृह्णाति। तस्य कालो जघन्योत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्तः।

[२१६. सासादननाम द्वितीयगुणस्थानम्]

तत्रैकसमयादारभ्य षडावलिसमयपर्यन्ते कालेऽवशिष्टे सति अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभानां मध्येऽन्यतमस्य कषायस्योदये सति जीवः सम्यक्त्वं विराध्य यावन्मिथ्यात्वं प्राप्नोति तावत्सासादनसम्यग्दृष्टिर्द्वितीयगुगस्थानवर्ती भवति।

[२१७. सासादनगुणस्थानस्य कालः]

तस्य कालो जघन्य एकसमय उत्कृष्टः षडावलिमात्रस्ततः परं नियमेन मिथ्यात्वप्रकृतेरुदयान्मिथ्यादृष्टिर्भवति।

---

२१५. अनिवृत्तकरणका विशेष

उस अनिवृत्तिकरणके चरम समयमें भव्य चारों गतियोंमें-से किसी भी गतिमें वर्तमान, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्तक, गर्भज, जिसकी विशुद्धि बढ़ रही है, शुभ लेश्या वाला, जागृत, ज्ञानोपयोगवान्, अनन्तानुबन्धि क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्प्रकृतिका उपशम करके प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करता है। उसका जघन्य तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

२१६. सासादन नामक द्वितीय गुणस्थान

उसमें-से एक समयसे लेकर षडावलि समय पर्यन्त काल शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया तथा लोभमें-से किसी एक कषायके उदय होनेपर जीव सम्यक्त्वकी विराधना करके जब तक मिथ्यात्वको प्राप्त होता है, तब तक सासादन सम्यग्दृष्टि नामक द्वितीय गुणस्थानवर्ती होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२१८. सम्यग्मिथ्यादृष्टिनाम तृतीयगुणस्थानम्]

सम्यङ्मिथ्यात्वप्रकृतेरर्हदुपदिष्टसन्मार्गे मिथ्यात्वादिकल्पितदुर्मार्गे च श्रद्धावान् जीवः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति तृतीयगुणस्थानवर्ती भवति।

[२१९. तृतीयगुणस्थानस्य स्थितिः]

तद्गुणस्थाने उत्तरगत्यायुर्बन्धो मरणं मारणान्तिकसमुद्घातगुणव्रत-महाव्रतग्रहणं च नास्ति। यदा म्रियते तदा सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्य म्रियते सम्यङ्मिथ्यात्वे न म्रियते। सम्यङ्मिथ्यात्वपरि-णामात्पूर्वस्मिन्सम्यक्त्वे वा मिथ्यात्वे वा परभवायुर्बन्धे तदेवासंयत-सम्यग्दृष्टिगुणस्थानं वा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं वा प्राप्य म्रियत इत्यर्थः।

---

२१७. सासादन गुणस्थानका समय

उसका जघन्य काल एक समय तथा उत्कृष्ट षडावलि मात्र है। उसके बाद नियमसे मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय होनेके कारण मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

२१८. सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक तृतीय गुणस्थान

सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे अर्हन्त-द्वारा उपदिष्ट सन्मार्ग में तथा मिथ्यात्व आदि कल्पित दुर्मार्गमें श्रद्धान करनेवाला जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक तृतीय गुणस्थानवर्ती होता है।

२१९. तृतीय गुणस्थानकी स्थिति

इस गुणस्थानमें आगेकी गतिके लिए आयु बन्ध, मरण, मारणान्तिक समुद्घात तथा अणुव्रत या महाव्रतका ग्रहण नहीं होता। जब मरता है तो सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त करके मरता है। सम्यग्मिथ्यात्वमें नहीं मरता। अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्व परिणामसे पहले सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वमें परभवकी आयुका बन्ध होनेपर उसी असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान अथवा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानको प्राप्त करके मरता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२२०. असंयतसम्यग्दृष्टिनाम चतुर्थगुणस्थानम्]

औपशमिकसम्यक्त्वे वा क्षायिकसम्यक्त्वे वा वेदकसम्यक्त्वे वा वर्तमानो जीवोऽप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभकषायोदयाद्द्वादशविधेऽसंयमे प्रवृत्तोऽसंयतसम्यग्दृष्टिरिति चतुर्थगुणस्थानवर्ती भवति ।

[२२१. देशसंयमो नाम पञ्चमगुणस्थानम्]

द्वितीयकषायोदयाभावे जीवोऽणुगुणशिक्षाव्रतरूप एकादशनिलयविशिष्टे देशसंयमे वर्तमानः श्रावक इति पञ्चमगुणस्थानवर्ती भवति ।

[२२२. प्रमत्तसंयतनाम षष्ठगुणस्थानम्]

प्रत्याख्यानावरणकषायोदयाभावे महाव्रतरूपं सकलसंयमं प्रतिपद्य संज्वलननोकषायमध्यमानुभागोदयात्पञ्चदशसु प्रमादेषु वर्तमानो जीवः प्रमत्तसंयत इति षष्ठगुणस्थानवर्ती भवति ।

---

२२०. असंयत सम्यग्दृष्टि नामक चौथा गुणस्थान

औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व अथवा वेदकसम्यक्त्वमें वर्तमान जीव अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया तथा लोभ कषायके उदयके कारण बारह प्रकारके असंयममें प्रवृत्त रहनेसे असंयत सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ गुणस्थानवर्ती होता है ।

२२१. देशसंयम नामक पाँचवाँ गुणस्थान

द्वितीय अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण कषायोंके अभावमें जीव अणुव्रत, तथा शिक्षाव्रत रूप ग्यारह स्थान विशिष्ट देशसंयममें वर्तमान श्रावक पंचम गुणस्थानवर्ती होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२२३. अप्रमत्तसंयतनाम सप्तमगुणस्थानम्]

संज्वलनक्रोधमानमायालोभकषायमन्दानुभागोदयात्सकलहिंसादिनिवृत्तिरूपसंयमे प्रमादरहिते वर्तमानो जीवोऽप्रमत्तसंयत इति सप्तमगुणस्थानवर्ती भवति।

[२२४. सातिशयाप्रमत्तस्य लक्षणम्]

स एव यदा क्षपकोपशमकश्रेण्यारोहणं प्रत्यभिमुखो भवति तदा करणत्रयमध्येऽधःप्रवृत्तकरणं करोतीति स एव सातिशयाप्रमत्त इत्युच्यते।

---

२२२. प्रमत्तसंयत नामक छठा गुणस्थान

प्रत्याख्यानावरण कषायोंके उदयके अभावमें महाव्रत रूप सकल संयमको प्राप्त करके संज्वलन नोकषायके मध्यम अनुभागके उदयके कारण पन्द्रह प्रमादोंमें वर्तमान जीव प्रमत्त संयत नामक छठे गुणस्थानवर्ती होता है।

२२३. अप्रमत्तसंयत नामक सातवाँ गुणस्थान

संज्वलन क्रोध, मान, माया तथा लोभ कषायके मन्द अनुभागके उदयसे सकल हिंसा आदि निवृत्तिरूप प्रमाद रहित संयममें वर्तमान जीव अप्रमत्तसंयत नामक सप्तम गुणस्थानवर्ती होता है।

२२४. सातिशय अप्रमत्त संयतका लक्षण

वही जब क्षपक या उपशम श्रेणि चढ़नेके अभिमुख होता है, तब तीन करणोंमें-से अधःप्रवृत्तकरण करता है, इसलिए वही सातिशय अप्रमत्त कहलाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२२५. अपूर्वकरणो नामाष्टमगुणस्थानम्]

पुनः क्षपकश्रेणिमुपशमकश्रेणिं वा समारुह्य प्रतिसमयमनन्तगुण-विशुद्धया वर्धमानो गुणश्रेणिनिर्जराद्यावश्यकानि कुर्वन्नुत्तरोत्तर-समयेषु पूर्वपूर्वसमयाप्राप्तानपूर्वानेव विशुद्धिपरिणामान् प्रतिपद्यमानो जीवः क्षपक उपशमको वापूर्वकरणसंयत इत्यष्टमगुणस्थानवर्ती भवति।

[२२६. अनिवृत्तिकरणनाम नवमगुणस्थानम्]

पुनरेकविंशतिचारित्रमोहनीयप्रकृतीः क्षपयन्नुपशमयंश्च प्रतिसमयं जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहितनानाजीवानामेकं सदृशविशुद्धिपरि-णामस्थानं प्रतिपद्यमानश्चानिवृत्तिकरणसंयत इति नवमगुण-स्थानवर्ती भवति।

---

२२५. अपूर्वकरण नामक आठवाँ गुणस्थान

फिर क्षपकश्रेणि अथवा उपशम श्रेणिका आरोहण करके प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि-द्वारा बढ़ता हुआ गुणश्रेणि निर्जरा आदि आवश्यकोंको करता हुआ उत्तरोत्तर समयमें पूर्व-पूर्व समयमें अप्राप्त अपूर्व ही विशुद्धि परिणामोंको प्राप्त करके क्षपक अथवा उपशमक जीव अपूर्वकरण संयत नामक अष्टम गुणस्थानवर्ती होता है।

२२६. अनिवृत्तिकरण नामक नवम गुणस्थान

इसके बाद चारित्र मोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियों का क्षय या उपशम करता हुआ प्रति समय जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट विकल्प रहित नाना जीवोंके एक सदृश विशुद्धि परिणाम स्थानको प्राप्त कर अनिवृत्ति-करण संयत नामक नवम गुणस्थानवर्ती होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२२७. सूक्ष्मसांपरायनाम दशमगुणस्थानम्]

पुनः सूक्ष्मत्व(कृ)ष्टिगतलोभानुभागोदयमनुभवन् चारित्रमोहनीय-प्रकृतीः क्षयोपशमयन्प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धया वर्तमानः प्रशस्त-ध्यानपरिणतः सूक्ष्मसाम्परायेति दशमगुणस्थानवर्ती भवति ।

[२२८. उपशान्तकषायनाम एकादशगुणस्थानम्]

एकविंशतिचारित्रमोहनीयप्रकृतीः समः निरवशेषमुपशमय्य यथा-ख्यातचारित्ररूपविशुद्धिविशेषपरिणतः कतकफलप्रयोगादधःकृता-प्रसन्नतोयसदृशविशुद्धिपरिणामः शुद्ध(शुक्ल)ध्याननिष्ठ उपशान्त-कषाय-वीतरागछद्मस्थ इत्येकादशगुणस्थानवर्ती भवति ।

[२२९. क्षीणकषायनाम द्वादशगुणस्थानम्]

समस्तमोहनीयप्रकृतीर्निरवशेषं निर्मूल्य स्फटिकभाजनगतप्रसन्नतोय-समविशुद्धान्तरङ्गो द्वितीयशुक्लध्यानबलेन ज्ञानावरणीयदर्शनावरणी-यान्तरायरूपघातित्रयं क्षपयन् परमार्थनिर्ग्रन्थः क्षीणकषायवीतराग-छद्मस्थ इति द्वादशगुणस्थानवर्ती भवति ।

---

२२७. सूक्ष्मसांपराय नामक दशम गुणस्थान

फिर सूक्ष्म कृष्टिगत लोभके अनुभागके उदयका अनुभव करता हुआ चारित्र मोहनीयको प्रकृतियोंका क्षय या उपशम करता हुआ, प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिमें वर्त्तमान, प्रशस्त ध्यान परिणत, सूक्ष्म-सांपराय नामक दशम गुणस्थानवर्ती होता है।

२२८. उपशान्त कषाय नामक ग्यारहवाँ गुणस्थान

चारित्र मोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोंका पूर्णरूपसे उपशमन करके यथाख्यात चारित्ररूप विशुद्धि विशेष परिणत कतक फल (निर्मली) के प्रयोगसे नीचे बैठ गया है मैल जिसका ऐसे निर्मल जलके समान विशुद्ध परिणाम वाला शुक्ल ध्याननिष्ठ उपशान्त कषाय वीत-राग छद्मस्थ नामक ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२३०. सयोगकेवलिनाम त्रयोदशगुणस्थानम्]

शुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धघातिकर्मचतुष्टयेन्धनः प्रादुर्भूताचिन्त्यकेवलज्ञानदर्शनविशिष्टलोचनद्वयावलोकितकालत्रयवर्तिसमस्तवस्तुसंभृतलोकालोकानन्तसुखसुधारससंतृप्तोऽनन्तानन्तवीर्यामितबलः सकलात्मप्रदेशेषु निचितविशुद्धचैतन्यस्वभावस्तीर्थंकरपुण्यविशेषोदयं संप्राप्ताष्टमहाप्रातिहार्यचतुस्त्रिंशदतिशयसमवसरणविभूतिसंभावितकैवल्य - कल्याणो दिवाकरकोटिबिम्बविडम्बितप्रभाभासुरप्रक्षीणतमः परमौदारिकदिव्यदेह इतरकेवली वा स्वयोग्यगन्धकुट्यादिविभूतिर्जगत्त्रयमव्यजनप्रबोधपारायणपरमदिव्यध्वनिश्शतेन्द्रवन्दितस्सयोगकेवलीति त्रयोदशगुणस्थानवर्ती भवति ।

---

२२९. क्षीणकषाय नामक बारहवाँ गुणस्थान

मोहनीय कर्मकी समस्त प्रकृतियोंको संपूर्ण रूपसे नष्ट करके स्फटिक पात्रमें रखे स्वच्छ जलके समान विशुद्ध अन्तरंगवाला द्वितीय शुक्लध्यानके बलसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय तथा अन्तराय रूप तीन घातिया कर्मोंका क्षय करता हुआ परम निर्ग्रन्थ क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ नामक बारहवें गुणस्थानवर्ती होता है।

२३०. सयोगकेवली नामक तेरहवाँ गुणस्थान

शुक्लध्यानरूप अग्निके द्वारा चार घातिया कर्मरूप इन्धनके जल जानेसे प्रकट हुए अचिन्त्य केवलज्ञान तथा केवलदर्शनरूप विशिष्ट नेत्र-द्वयके द्वारा कालत्रयवर्ती समस्त वस्तु समूहसे भरे हुए लोकालोकको देखनेवाले, अनन्त सुखरूप सुधारससे संतृप्त, अनन्त वीर्यरूप अमित बलयुक्त, समस्त आत्म प्रदेशोंमें व्याप्त विशुद्ध चैतन्य स्वभाव, तीर्थंकर पुण्य विशेषके उदयसे प्राप्त हुए अष्ट महाप्रातिहार्य, चौंतीस अतिशय, समवशरण विभूतिके द्वारा मनाया गया है कैवल्य कल्याणक जिनका, करोड़ों सूर्योंके प्रतिबिम्बको तिरस्कृत करनेवाली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२३१. अयोगकेवलिनाम चतुर्दशगुणस्थानम्]

पुनः स एव यद्यन्तर्मुहूर्तावशेषायुस्थितिस्ततोऽधिकशेषाघातिकर्मत्रयस्थितिस्तदाष्टभिः समयैर्दण्डकवाटप्रतरलोकपूरणप्रसर्पणसंहारस्य समुद्घातं कृत्वान्तर्मुहूर्तावशेषितायुःस्थितिसमानशेषाघातिकर्मस्थितिस्सन् सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिनामतृतीयशुक्लध्यानबलेन कायवाङ्मनोनिरोधं कृत्वायोगकेवली भवति। यदि पूर्वमेव समस्थितिं कृत्वा घातिचतुष्टयस्तदा समुद्घातक्रियया विना तृतीयशुक्लध्यानेन योगनिरोधं कृत्वायोगकेवली भवति।

प्रभासे देदीप्यमान परम औदारिक दिव्य देहसे युक्त तीर्थंकर अथवा स्वयोग्य गन्धकुटी आदि विभूतिसे युक्त सामान्य केवली परम दिव्य-ध्वनि द्वारा तीनों लोकोंके भव्य जनोंको प्रबोध देनेमें तत्पर, सौ इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय सयोगकेवली तेरहवें गुणस्थानवर्ती हैं।

२३१. अयोगकेवली नामक चौदहवाँ गुणस्थान

फिर वही (सयोगकेवली) यदि अन्तर्मुहूर्त आयु स्थिति शेष रहने पर उससे अधिक शेष तीन अघातिया कर्मोंकी स्थिति शेष रहती तो आठ समयों द्वारा दण्ड, कवाट, प्रतर, लोक पूरण, प्रसर्पण पुनः प्रतर कपाट और दण्डरूप संहारके द्वारा समुद्घात करके, अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट आयु स्थितिके समान शेष घाति कर्मोंकी स्थिति होनेपर सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामक तृतीय शुक्लध्यानके बलसे मन, वचन, कायका निरोध करके अयोगकेवली होता है। यदि पहले ही घाति कर्मोंकी स्थिति आयु कर्मकी स्थितिके बराबर होती है, तब समुद्घात क्रियाके विना तृतीय शुक्लध्यानके द्वारा योग निरोध करके अयोगकेवली होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२३२. मुक्तावस्थायाः स्वरूपम्]

पुनः स एवायोगकेवली सकलशीलगुणसंपन्नो व्युपरतक्रियानिवृत्तिनामचतुर्थशुक्लध्यानेन पञ्चलघ्वक्षरोच्चरणमात्रस्वगुणस्थानकालद्विचरमसमये देहादिद्वासप्ततिप्रकृतीः क्षपयित्वा पुनश्चरमसमये–एकतरवेदनीयादित्रयोदशकर्मप्रकृतीः क्षपयित्वा तदनन्तरसमये निष्कर्माशरीरस्सम्यक्त्वाद्यष्टगुणपुष्टपरमशरीरात्किचिदूनपुरुषाकारविशुद्धि - ज्ञानदर्शनमयो जीवो घनस्वरूप ऊर्ध्वगमनस्वभावादेकस्मिन्नेव समये लोकाग्रं गत्वा सिद्धपरमेष्ठी सन्सर्वकालमनन्तसुखतृप्तः केवलज्ञानदर्शनद्वयनिर्मललोचनद्वयेन त्रिकालगोचरानन्तद्रव्यगुणपर्यायान् लोकालोको च जानन् पश्यन्नवतिष्ठते । लोकाद्बहिः सति सहकारिधर्मास्तिकायाभावान्न गच्छति । अत एव लोकालोकविभागश्च ।

---

२३२. मुक्तावस्थाका स्वरूप

फिर वही अयोगकेवली समस्त शील गुण संपन्न व्युपरत क्रिया निवृत्ति नामक चतुर्थ शुक्लध्यानके द्वारा पाँच लघु अक्षरोंके उच्चारण करने योग्य, अपने गुणस्थान कालके द्विचरम समयमें देह आदि बहत्तर प्रकृतियोंका क्षय करके फिर चरम समयमें एकतर वेदनीय आदि तेरह कर्म प्रकृतियोंका क्षय करके उसके अनन्तर समयमें, निष्कर्म, अशरीर, सम्यक्त्व आदि अष्ट गुण युक्त, अन्तिम शरीरसे कुछ न्यून पुरुषाकार, विशुद्ध ज्ञान-दर्शनमय, घनस्वरूप जीव ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण एक ही समयमें लोकके अग्र भागमें जाकर सिद्ध परमेष्ठी होकर, अनन्तकाल तक अनन्त सुखसे तृप्त केवलज्ञान तथा केवलदर्शनरूप निर्मल लोचन द्वयके द्वारा त्रिकाल गोचर अनन्त द्रव्य गुण पर्यायोंको तथा लोक-अलोकको जानता-देखता अवस्थित रहता है। वह लोकके आगे, सहकारी धर्मास्तिकायके न होनेके कारण, नहीं जाता। और इसीलिए लोक तथा अलोकका विभाग है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इति सकलकर्मप्रकृतिरहितसिद्धात्मस्वरूपं प्राप्तुकामा भव्या अनवरतं परमागमाभ्यासजनितनिर्मलसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपोभावनानिष्ठा भवन्तु ।

जयन्ति विधुताशेषपापाञ्जनसमुच्चयाः ।
अनन्तानन्तधीदृष्टिसुखवीर्या जिनेश्वराः ॥

कृतिरियमभयचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिनः ।

इति कर्मप्रकृतिः ।

इस प्रकार समस्त कर्मप्रकृतियोंसे रहित सिद्धोंके आत्म स्वरूपको प्राप्त करनेके इच्छुक भव्य जीव निरन्तर परमागमके अभ्यास-द्वारा उत्पन्न निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र और तपकी भावनासे विशिष्ट हों ।

जिन्होंने समस्त पाप-मलके समूहको धो डाला है तथा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यको प्राप्त कर लिया है, वे जिनेन्द्रदेव जयवन्त हों ।

यह कृति अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की है।

कर्मप्रकृति समाप्त ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दानुक्रम

अगुरुलघु नामकर्म ११७
अघातिकर्म १८२
अङ्कसंदृष्टि २१२
अचक्षुदर्शनावरणीय २३
अणुव्रत २२१
अतिशय २३०
अर्धनाराच संहनन १०३
अधःप्रवृत्तकरण २०६
अन्तराय १३
अन्तरायके भेद १५८
अन्तर्मुहूर्त २३१
अनन्तानुबन्धिकषाय ४१
अनादेय नामकर्म १५०
अनिवृत्तिकरण २०८,२१४,२२६
अनुभाग २१२
अनुभागकाण्डघात २१२
अनुभागबन्ध १७९
अप्रत्याख्यान कषाय ४२
अप्रमत्तसंयत २२३
अप्रशस्तप्रकृति २१२
अपर्याप्त नामकर्म १३१
अपूर्वकरण २०७,२२५
अभव्यजीव १९६
अयशस्कीर्तिनामकर्म १५२
अयोगकेवली १३१
अरति ५१
अलोक २३२
अवधिज्ञान १८
अवधिज्ञानावरणीय १८
अवधिदर्शनावरणीय २४
अशुभनामकर्म १४५
अस्थिर नामकर्म १४२
असाता वेदनीय ३३
असंप्राप्तसृपाटिका संहनन १०५
असंयत सम्यग्दृष्टि १२०
आतप नामकर्म १२०
आदेय नामकर्म १४९
आनुपूर्वी नामकर्म ११६
आयु १०
आयुकर्मके भेद ५८
आहारपर्याप्ति १३३
आहारकशरीरांगोपांग ९८
आहारकशरीरसंघात ८८
आहारकशरीर नामकर्म ८०
आहारकशरीरबन्धन ८५
इतरकेवली २३०
इन्द्रियपर्याप्ति १३५
उच्च गोत्र १५६

संख्या संकेत क्रमाङ्कोंका है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उच्छ्वास नामकर्म १२२
उच्छ्वास-निश्वासपर्याप्ति १३६
उत्तरप्रकृति ४
उत्तरोत्तरप्रकृति ४
उद्योतनामकर्म १२१
उत्कृष्टस्थिति १६९, १७०,१७१,१७२ १७३
उपघात नामकर्म ११८
उपभोगान्तराय १६२
उपशमक २२५
उपशम श्रेणी २२४,२२५
उपशान्तकषाय २२८
एक समय २१६
एकेन्द्रिय ५२
औदारिकशरीरांगोपांग ९७
औदारिकशरीरबन्धन ८४
औदारिकशरीरनामकर्म ७८
औदारिकशरीरसंघात ८७
औपशमिकसम्यक्त्व २२०
अंगोपांग नामकर्म ९६
कर्म १
कर्मके भेद १
कर्म प्रकृति २३२
करणलब्धि २०४
कल्याण २३०
कषाय ४०
कार्मणशरीर ८२
कार्मणशरीरबन्धन ८५
कार्मणशरीरसंघात ८८
कीलितसंहनन १०४
कुब्ज संस्थान ९३
केवलज्ञान २०
केवलज्ञानावरणीय २०
क्षपक २२५
क्षपकश्रेणी २२४,२२५
क्षयोपशमलब्धि २००
क्षायिक सम्यक्त्व २२०
क्षीणकषायगुणस्थान २२९
गति ७०
गतिनामकर्मके भेद ६५
गन्धनामकर्म १०९
गर्भज २१५
गुणव्रत २२१
गुणश्रेणी निर्जरा २१२,२१३,२२५
गोत्रकर्म १५५
घातिकर्म १८१
चक्षुदर्शनावरणीय २२
चतुरिन्द्रियजाति ७५
चारित्र २३२
चारित्रमोहनीय ३४
चारित्र मोहनीयके भेद ३९
छद्मस्थ २२८
जघन्यस्थिति १७४,१७५,१७६
जाति नामकर्म ७१
जुगुप्सा ५४
ज्ञानावरणीय ६,२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानोपयोग २१५
त्रस १२६
त्रीन्द्रिय जाति ७४
तप २३२
तिर्यग् आयु ६०
तिर्यग्गति ६७
तीर्थंकरनामकर्म १५४
तैजसशरीर नामकर्म ८१
तैजसशरीरबन्धन ८५
तैजसशरीरसंघात ८८
द्वीन्द्रिय जाति ७३
दर्शनमोहनीय ३४,३५
दर्शनावरणीय ७,२१
दानान्तराय १५९
दुर्भगनामकर्म १४६
दुस्स्वरनामकर्म १४८
देव आयु ६२
देव गति ६९
देशनालब्धि २०२
देशसंयम २२१
न्यग्रोध संस्थान ९१
नपुंसकवेद ५७
नरकगति ६६
नरकायु ५९
नामकर्म ११
नामकर्मके भेद ६३,६४
नाराच संहनन १०२
निद्रा २६
निद्रानिद्रा २७
नीचगोत्र १५७
निर्माणनामकर्म १५३
नोकर्म १९०
पर्याप्तनामकर्म १३०
परघातनामकर्म ११९
प्रचला २८
प्रचलाप्रचला २९
प्रत्याख्यानकषाय ४३
प्रत्येक शरीर १३९
प्रथमोपशम सम्यक्त्व १९९,२१५
प्रदेशबन्ध १८४,१८५,१८६
प्रमत्त संयत २२२
प्रमाद २२२
प्रशस्तप्रकृति २१२
प्रशस्तविहायोगति १२४
प्रायोग्यतालब्धि २०३
पंचेन्द्रिय जाति ७६
पुंवेद ५६
बन्धननामकर्म ८३
बादरनामकर्म १२८
भय ५३
भव्य जीव १९४
भावकर्म १८८,१८९
भावना २३२
भाषापर्याप्ति १३७
भोगान्तराय १६१
मतिज्ञान १६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मतिज्ञानावरणीय १६
मनःपर्ययज्ञान १९
मनःपर्ययज्ञानावरणीय १९
मनःपर्याप्ति १३८
मनुष्य आयु ६१
मनुष्यगति ६८
महाप्रातिहार्य २३०
महाव्रत २२२
मिथ्यात्व २६
मिथ्यात्व गुणस्थान १९८
मुक्तजीव १९२
मूलप्रकृति ४,५
मोहनीय ९
मोहनीयके भेद ३४
यथाख्यातचारित्र २२८
यशस्कीर्ति नामकर्म १५१
रति ५०
रस नामकर्म ११०
लाभान्तराय १६०
लोक २३२
व्युपरतक्रियानिवृत्ति २३२
वज्रनाराच संहनन १०१
वज्रवृषभनाराचसंहनन १००
वर्णनामकर्म १०७
वर्णनामकर्मके भेद १०६
वामन संस्थान ९४
विहायोगतिनामकर्म १२३
विशुद्धि लब्धि [illegible]
वीतराग २२८
वीर्यान्तराय १६३
वेदक सम्यक्त्व २२०
वेदनीय ८
वेदनीयके भेद ३१
वैक्रियकशरीरनामकर्म ७९
वैक्रियकशरीरबन्धन ८५
वैक्रियकशरीरांगोपांग ९८
वैक्रियकशरीरसंघात ८८
श्रुतज्ञान १७
श्रुतज्ञानावरणीय १७
शरीरनामकर्म ७७
शरीरपर्याप्ति १३४
शिक्षाव्रत २२१
शुक्लध्यान २२९,२३०
शुभ नामकर्म १४३
शोक ५२
षडावलि २१६,२१७
स्त्रीवेद ५५
स्त्यानगृद्धि ३०
स्थावर १२७
स्थितिबन्ध १६७
स्थितिकाण्डक घात २१२
स्थिरनामकर्म १४१
स्पर्शनामकर्म ११४
स्फटिक भाजन २२९
स्वातिसंस्थान ९२
संक्रम २१२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सञ्ज्ञी पंचेन्द्रिय २१५
संघात नामकर्म ८६
संज्वलन कषाय ४४
संस्थान नामकर्म ८९
संसारीजीव १९१,१९३
संहनन नामकर्म ९९
सकलसंयम २२३
सकलहिंसादिनिवृत्ति २२३
सम्यग्मिथ्यात्व ३७
सम्यग्मिथ्यादृष्टि २१८
सम्यक्त्वप्रकृति ३८
समचतुरस्रसंस्थान ९०
समवशरण २३०
समुद्घात २३१
सयोगकेवली गुणस्थान २३०
साता वेदनीय ३२
सातिशय अप्रमत्त २२४
साधारणशरीर १४०
सासादनगुणस्थान २१७
सुभगनामकर्म १४५
सुस्वरनामकर्म १४७
सूक्ष्मनामकर्म १२९
सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति २३१
सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान २२७
हास्य ४९
हुंडक संस्थान ९५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

साहित्याचार्य, जैन दर्शनाचार्य, न्यायतीर्थ, काव्यतीर्थ, एम० ए० (संस्कृत), एम० ए० (प्राकृत तथा जैन धर्म, स्वर्ण पदक प्राप्त), पी-एच० डी० ।

प्रकाशित साहित्य

१. सत्यशासन परीक्षा (सम्पादित)
भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित

२. यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन (शोध प्रबन्ध) पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी द्वारा प्रकाशित

३. कर्मप्रकृति (सम्पादित) भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित

४. शोध निबन्ध और ललित रचनाएँ लगभग अस्सी। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित

प्रकाश्य

५. जैनसाहित्य और संस्कृति
(निबन्ध संग्रह)

६. परमागमसार (सम्पादित)

सन् १९६२ से भारतीय ज्ञानपीठ की विभिन्न सांस्कृतिक प्रवृत्तियों से सम्बद्ध। जैन साहित्य और संस्कृति के अध्ययन-अनुसन्धान, सम्पादन-प्रकाशन के लिए सम्पूर्णरूप से समर्पित।

पता—कृष्ण निवास, गुरुबाग, वाराणसी–१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३५६०

भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्री का
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक-हितकारी
मौलिक साहित्य का निर्माण

■

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

■

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi